• वर्ष ६६ • अंक २४ • मूल्य ₹ ४०

दिसम्बर (द्वितीय) २०२४

पाक्षिक

परोपकारी

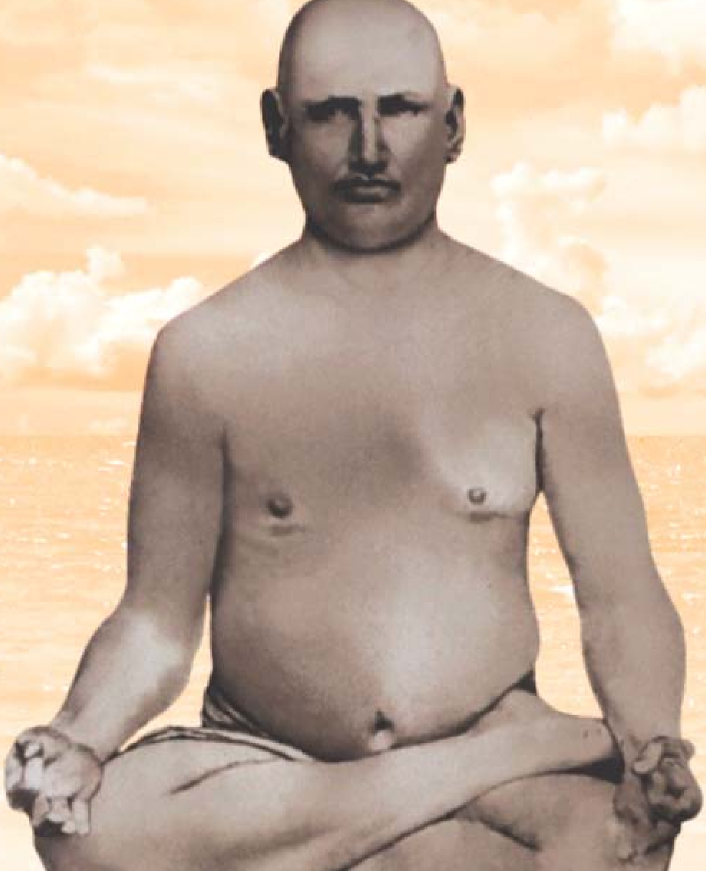

स्वतन्त्रता के प्रथम उद्घोषक, नवजागरण के पुरोधा

महर्षि दयानन्द सरस्वती

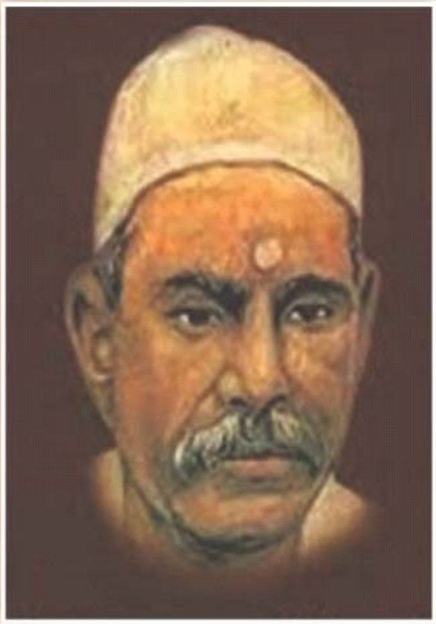

पं. बालकृष्ण भट्ट
(१८४४-१९१४)

पं. बालकृष्ण भट्ट - प्रयाग से प्रकाशित होने वाले '**हिन्दी प्रदीप**' के सम्पादक तथा भारतेन्दु काल के प्रसिद्ध निबन्ध लेखक और पत्रकार थे।

हिन्दी प्रदीप
महर्षि दयानन्द सरस्वती का शोकवृत्तान्त

यह भी हम इस हिन्दुस्तान तक को अभागा ही कहें कि इसके ऐसे हितैषी परलोक यात्रा के लिए दत्त चित्त हो झटपट सिधार गये। सिवा कतिपय प्रतारक, धूर्त ब्राह्मण और कोरे पण्डितों को, जो इनकी गुप्त नीति के मर्म समझने को सर्वथा असमर्थ हैं, और कोई प्रसन्न न हुआ होगा। आर्यसमाज की बाँह टूट गई, **सरस्वती का भण्डार लुट गया**, यहाँ के बिगड़े समाज के संशोधन का फाटक ढै गया; यह इन्हीं महात्मा का पुरुषार्थ है कि भारतवर्ष के धर्म तत्त्व का सर्वस्व वेद, जिसे बड़े-बड़े विद्वान् ब्राह्मण भी केवल पाठ मात्र पढ़ लेने के (अर्थ-ज्ञान की ओर से निपट मूर्ख थे) और कुछ भी न जानते थे कि इसमें क्या चील विलार भरा है, सिवा 'मक्षिकास्थाने मक्षिका' के, सो भी केवल पाठ मात्र में, अर्थ से क्या सरोकार। उसे सब जाति और चारों वर्ण के लोग समझने लगे और अब बहुतों के मन में लगी है कि इस वेदरूपी अगाध महोदधि में गहरी डुबकी मार, इसकी थाह लेनी चाहिए कि इसमें क्या-क्या रत्न भरे हैं। अतिरिक्त वेद के उद्धार के, हिन्दू समाज की सैकड़ों बिगड़ी बातों को सुधारने में भी कोई कल-बल इन्होंने नहीं छोड़ रखा। 'कद्र मरदुम बाद मरदुम' महर्षि दयानन्द सरस्वती महाशय के न रहने पर अब इनकी कदर लोगों को होगी। कच्चे जौहरी, जिन्होंने हीरा को काँच समझ रखा था, चाहे जो कहें, पर हम अंग्रेजी (मोटो) सिद्धान्त पर दृढ़ रह **दयानन्द** की सर्वतोभाव से सराहना ही करेंगे।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की
उत्तराधिकारिणी परोपकारिणी सभा
का मुखपत्र

ओ३म्

*विद्याविलासमनसो धृतशीलशिक्षाः,
सत्यव्रता रहितमानमलापहाराः।
संसारदुःखदलनेन सुभूषिता ये,
धन्या नरा विहितकर्म परोपकाराः।।*

वर्ष : ६६ **अंक :** २४

दयानन्दाब्द: २००

विक्रम संवत् पौष कृष्ण २०८१

कलि संवत् - ५१२५

सृष्टि संवत् - १,९६,०८,५३,१२५

सम्पादक

डॉ. वेदपाल

प्रकाशक- परोपकारिणी सभा,

केसरगंज, अजमेर- ३०५००१

दूरभाष: ०१४५-२४६०१६४

०८८९०३१६९६१

मुद्रक- डॉ. दिनेशचन्द्र शर्मा

वैदिक यन्त्रालय, अजमेर।

८२०९५८६१६६

परोपकारी का शुल्क

भारत में

एक वर्ष-४०० रु.

पाँच वर्ष-१५०० रु.

आजीवन (२० वर्ष) -६००० रु.

एक प्रति - २०/- रु.

वैदिक पुस्तकालय : ०१४५-२४६०१२०

०७८७८३०३३८२

ऋषि उद्यान : ०१४५-२९४८६९८

RNI. No. ३९५९ / ५९

परोपकारी

दिसम्बर द्वितीय, २०२४

अनुक्रम

०१. सर्वधनी संन्यासी-श्रद्धानन्द	सम्पादकीय	०४
०२. आर्यसमाज के रक्त रंजित...	प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	०६
०३. महर्षि को समर्पित व्यक्तित्व...	डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री	१०
०४. ऋषि दयानन्द के चरणों में		१४
०५. अस्पृश्यता प्रगति में बाधक है	स्वामी श्रद्धानन्द	१५
०६. निवेदन		१८
०७. विशेष सूचना		१८
०८. स्वामी का स्वामी से मिलाप	पं. नारायणप्रसाद 'बेताव'	१९
* नवीन प्रकाशन पर ५० प्रतिशत की विशेष छूट		१९
०९. महात्मा मुंशीराम जी और गुरुकुल...	श्री रैम्जे मैकडानल्ड	२०
१०. ज्ञान सूक्त-२३	डॉ. धर्मवीर	२३
* परोपकारिणी सभा द्वारा प्रकाशित पुस्तकों पर विशेष छूट		२६
११. श्रद्धाञ्जलि		२६
१२. कर्मसिद्धान्त की सर्वजनोपयोगी आर्षदृष्टि...	डॉ. आशुतोष पारीक	२७
* प्रवेश सूचना		३२
१३. संस्था की ओर से....		३३
* 'सत्यार्थ प्रकाश' प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति		३४

www.paropkarinisabha.com
email : psabhaa@gmail.com

उपनिषद्, दर्शन, प्रवचन आदि सुनने हेतु बटन दबाएँ
www.paropkarinisabha.com→gallery→videos

'परोपकारी' पत्रिका में प्रकाशित सभी आलेखों में व्यक्त विचार लेखकों के निजी हैं। इन्हें सम्पादकीय नीति नहीं समझा जाये। किसी भी विवाद की परिस्थिति में न्यायक्षेत्र अजमेर ही होगा।

सर्वधनी संन्यासी-श्रद्धानन्द

यक्ष-युधिष्ठिर संवाद का अन्तिम सन्दर्भ है कि कौन ऐसा पुरुष है, जिसे 'सर्वधनी' कहा जा सके? युधिष्ठिर का उत्तर है-

तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे तथैव च।
अतीतानागते चोभे स वै सर्वधनी नरः।।

जिस पुरुष के प्रिय-अप्रिय, सुख-दुःख तथा भूत और भविष्यत् समान हैं, वही सर्वधनी है। अर्थात्- अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियों में जो पुरुष निःस्पृह, शान्तभाव से कर्त्तव्यविमुख न होकर कर्त्तव्यपालन में निरत रहता है, वही 'सर्वधनी' है।

मनुष्य के जीवन में परस्पर विरोधी परिस्थितियां समय-समय पर उपस्थित होती रहती हैं, किन्तु इन विषम अवस्थाओं में सम रहना सरल नहीं है।

स्वामी श्रद्धानन्द (जिनका संन्यास पूर्व का नाम मुंशीराम था।) का जीवन इन विषम परिस्थितियों से होकर गुजरा, किन्तु वह सदैव कर्त्तव्य पथ पर ही आरूढ़ रहे, कोई भी परिस्थिति उन्हें सत्पथ से विचलित नहीं कर सकी। तद्यथा- पिता का वियोग कोई साधारण घटना नहीं है, किन्तु मुंशीराम के पिता नानकचन्द जी की मृत्यु के पश्चात् मुंशीराम जी के बड़े भाई ने अर्थी के लिए पौराणिक रीति से तैयारी शुरु कर दी थी, किन्तु श्मशान भूमि में पहुँचते ही सब स्वयं अलग हो गए और मुंशीराम जी के निर्देश के अनुसार अन्त्येष्टि वैदिक रीति से सम्पन्न हुई। बारह दिन के पश्चात् नानकचन्द जी के विश्वासपात्र सेवक भीमा ने उनकी आज्ञानुसार सब चाबियां मुंशीराम जी के सामने रख दीं, किन्तु मुंशीराम जी ने सभी भाईयों को इकट्ठा कर सम्पत्ति का बंटवारा कर सब को सन्तुष्ट कर बचा हुआ भाग लिया। इसी प्रकार बरेली और बनारस की कोठियों, घोड़े आदि जानवर तथा पिता के जमा धन का बंटवारा किया। यद्यपि बंटवारे में मुंशीराम जी को आर्थिक हानि हुई, किन्तु उसकी कोई परवाह नहीं की।

मुंशीराम जी के जीवन में ऐसी परिस्थिति भी उपस्थित हुई, जिसमें व्यक्ति किन्तु-परन्तु कर बचने के मार्ग खोजता है। यह था पण्डित गोपीनाथ द्वारा किया गया मानहानि का अभियोग। गोपीनाथ 'सनातन धर्म गजट' का सम्पादक और सनातन धर्म सभा का मन्त्री था। आर्यसमाज, मुंशीराम, सद्धर्मप्रचारक के विरुद्ध वह आधारहीन आलोचना करता रहता था। सद्धर्म प्रचारक में गोपीनाथ के व्यक्तिगत जीवन के विषय में कोई टिप्पणी/समाचार छप गया। यद्यपि यह उपसम्पादक लाला वजीरचन्द ने छपवाया था। मुंशीराम जी को छपने से पूर्व इसकी जानकारी नहीं थी।

अभियोग में प्रमाण की आवश्यकता थी, अन्यथा सजा की पूरी सम्भावना थी। वकील लाला भगतराम के प्रमाण पूछने पर मुंशीराम ने स्पष्ट कर दिया था कि कोई प्रमाण नहीं है। मुंशीराम स्थितप्रज्ञ के सदृश न्यायालय में अपने हाथ पीठ के पीछे किए खड़े थे। कोई अज्ञात पुरुष पण्डित गोपीनाथ के विरुद्ध प्रामाणिक साक्ष्य का बन्डल उनके हाथ में चुपचाप रखकर वहाँ से निकल गया। संयोग से न्यायालय के मध्यावकाश के पश्चात् केस का नम्बर था। वकील परेशान थे। मुंशीराम ने वह बन्डल वकील की ओर बढ़ाया कि अभी किसी ने यह पीछे से थमाया है। बन्डल को खोलते ही वकील की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था, क्योंकि इसमें गोपीनाथ की चिट्ठियां तथा अन्य ऐसे साक्ष्य थे, जो अभियोग की दिशा बदलने में सहायक हुए। यदि कोई अविचल था तो वह था- मुंशीराम।

पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी के समय से ही उपदेशक कक्षाएं चलाने की चर्चा होती रहती थी, किन्तु डी.ए.वी. कॉलेज में वह सम्भव न हो सका। महात्मा हंसराज जी की पार्टी की सम्पूर्ण शक्ति डी.ए.वी. के विस्तार में लगी थी। आर्यसमाज की आलोचनाओं के उत्तर का सारा

दायित्व आर्यप्रतिनिधि सभा पर ही था। सभा में भी उपदेशक/आश्रम पद्धति के विद्यालय (गुरुकुल) पर विचार चलता ही रहता था। किन्तु व्यय साध्य कार्य के लिए धनकी व्यवस्था कहां से हो? मुंशीराम जी ने इस कठिन दायित्व को स्वीकार किया और असम्भव दिखाई देने वाली घोषणा कि जब तक तीस हजार (३००००/-) की धनराशि संग्रहीत न कर लूँगा, तब तक घर में पैर नहीं रखूंगा। इसके लिए यात्राएं और व्याख्यान के माध्यम से यथासमय वह राशि संग्रहीत हुई। उन्नीसवीं सदी के अन्त में यह सब कल्पना ही लगती थी, किन्तु सर्वधनी मुंशीराम ने इस असम्भव (तीस हजार का संकल्प और संग्रह चालीस हजार हुआ।) को सम्भव कर दिया।

अप्रैल १९१७ में संन्यास ग्रहण कर मुशीराम से श्रद्धानन्द संन्यासी बनने पर भी वामन से विराट् बनने की प्रक्रिया अनवरत रूप से चलती रही।

सन् १९१९ दिसम्बर में अमृतसर में होने वाले कांग्रेस अधिवेशन की व्यवस्थाओं के भारी वर्षा के कारण ध्वस्त होने पर बड़े-बड़े कांग्रेसियों के निराश होने पर अमृतसर निवासियों को प्रेरित कर प्रतिनिधियों की आवास व्यवस्था घरों में कर अपनी अनुपम सूझ और नेतृत्व क्षमता को अभिव्यक्ति प्रदान की। स्वागताध्यक्ष होने के नाते स्वागतभाषण परम्परा से हटकर हिन्दी भाषा में दिया और दलितोद्धार को कांग्रेस के एजेण्डे में सम्मिलित करने का प्रस्ताव रखना उनकी दीर्घदृष्टि का परिचायक है।

स्वामी जी के व्यक्तित्व की विशालता का दिग्दर्शन कराने के लिए निम्न घटनाएं अति महत्त्वपूर्ण हैं-

अ. ३० मार्च सन् १९१९ की दिल्ली में हुई हड़ताल की सफलता का सर्वाधिक श्रेय स्वामी जी को ही है। सैनिकों की संगीनों के सामने अविचल खड़े रहना कोई साधारण घटना नहीं थी।

आ. दिल्ली की जामामस्जिद और फतहपुरी-दिल्ली की मस्जिद से वेदमन्त्र का उच्चारण कर समवेत हिन्दुओं तथा मुसलमानों को सम्बोधित करना इतिहास की एक अकेली घटना है। इसकी पुनरावृत्ति न तो हुई है और होने की सम्भावना भी नहीं है।

इ. सन् १९२३ में सिख बन्धुओं ने जैतों में (नाभा रिसायत) सत्याग्रह किया। स्वामी जी उसका नेतृत्व करते हुए जेल गए और छ: मास का कारावास हुआ।

ई. अमृतसर के निकट गुरु का बाग सत्याग्रह में भी सक्रिय भाग लिया।

धौलपुर (राजस्थान) का सत्याग्रह और पटियाला में ८४ आर्यसमाजियों के विरुद्ध चलाए गए राजद्रोह अभियोग में सक्रिय पैरवी की। इसके कारण वह अभियोग वापिस हुआ।

सन् १९२५ फरवरी मास में महर्षि दयानन्द सरस्वती की प्रथम जन्मशताब्दी मनाने का निश्चय हुआ। स्वामी श्रद्धानन्द सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान थे। आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मतभेद किसी से छिपे नहीं थे। महात्मा हंसराज प्रादेशिक सभा के नेता थे। इस कारण यह सम्भावना थी कि प्रादेशिक सभा स्वामी श्रद्धानन्द के नेतृत्व में पूर्ण मनोयोग से सहयोग न करे। स्वामी श्रद्धानन्द ने सार्वदेशिक के प्रधान होते हुए भी अपने मान-अपमान को महत्त्व न देकर जन्मशताब्दी महोत्सव महात्मा नारायण स्वामी के नेतृत्व में मनाने का प्रस्ताव किया। वह समारोह महात्मा नारायण स्वामी के नेतृत्व में सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

प्रिय-अप्रिय, मान-अपमान, सुख-दु:ख, अनुकूल-प्रतिकूल आदि विषयों से ऊपर उठकर सभी अवस्थाओं में स्थितप्रज्ञ के सदृश रहकर कर्त्तव्यपथ पर अड़िग रहने वाले शताब्दियों नहीं, अपितु सहस्राब्दियों में विरले ही होते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द ऐसे महापुरुषों में अग्रगण्य हैं। इनकी कीर्ति ही पृथिवी से द्यौ तक व्यापती है। इन्हें ही युधिष्ठिर ने सर्वधनी कहा है। किन्तु अफसोस कि मानवता का ऐसा हितचिन्तक २३ दिसम्बर १९२६ को एक मतान्ध मुसलमान की गोली का निशाना बना। बलिदान दिवस पर विनम्र स्मरण। **डॉ. वेदपाल**

आर्यसमाज के रक्त रंजित इतिहास की अनूठी घटनायें

प्रा. राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

श्री स्वामी श्रद्धानन्द के छोटे बड़े कई जीवन चरित्र छप चुके हैं। इस सेवक को उनका अब तक का सबसे बड़ा जीवन चरित्र लिखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जब यह खोजपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशनार्थ भेजा जाने लगा तो सोचा कि इतना बड़ा ग्रन्थ कौन लेकर पढ़ेगा? तब दो सौ पृष्ठ की सामग्री उसमें से हटानी पड़ी। आज इस लेख में महाबलिदानी मुनि महात्मा के जीवन की कई अनूठी अत्यन्त प्रेरक घटनायें विचारशील पाठकों की भेंट की जा रही है।

ये घटनायें किसी कालक्रम से हीं दी जावेंगी। मुझे अत्यन्त दु:ख से यह लिखना पड़ता है कि आर्यसमाज के मिशनरियों ने मेरे ग्रन्थ, मेरी खोज, मेरी लगन और मेरे परिश्रम का कतई लाभ नहीं उठाया।

जब स्वामी जी के अभियोग का निर्णय सुनाया गया– श्री स्वामी जी जब सिखों के 'गुरु के बाग मोर्चा' में अकाल तखत से भाषण देकर कालकोठरी में गोराशाही ने ठूंस दिये तब उनके केस के निर्णय के दिन कोर्ट में भारी भीड़ एकत्र हो गई। सिख भाई श्रद्धा से भरपूर हृदय के साथ बहुत बड़ी संख्या में कोर्ट में उपस्थित थे। आर्यसमाजी तथा हिन्दू भाई भी उस दिन उस शूरता की शान श्रद्धानन्द के अभियोग का निर्णय सुनने पहुँचे। कोर्ट में तिल धरने के लिए भी स्थान नहीं था।

दीनानगर के प्रसिद्ध आर्यसमाजी लाला देवराज तब अमृतसर अभियोग का निर्णय सुनने पहुंचे। मेरे ज्येष्ठ भ्राता ने दीनानगर में निवासकाल में मुझे बताया कि लाला देवराज जी के पास तेरे काम की विशेष सामग्री है। उनसे मिलकर स्वामी श्रद्धानन्द जी के अभियोग की आँखों देखी घटना सुन ले।

मैंने लालाजी से भेंट करके 'गुरु का बाग मोर्चा' में स्वामी श्रद्धानन्द के अभियोग विषयक संस्मरण सुनाने की विनती की तो लाला जी बोले कोर्ट में उस दिन भारी भीड़ थी। खड़े होने के लिए स्थान नहीं था। संन्यासी महात्मा को जब कारागार में डालने का दण्ड सुनाया गया तो उपस्थित दर्शकों में उनके चरण स्पर्श करने की होड़ लग गई। सिखों की श्रद्धा व जोश बस देखे ही बनता था। पुलिस के लिए भक्तों को नियन्त्रण में रखना एक समस्या बन गई।

तब पुलिस के उच्च अधिकारी ने कहा, "स्वामी जी महाराज आप कोर्ट के बाहर पेड़ के नीचे खड़े हो जावें। वहाँ सब जन बारी-बारी आपके चरण छू लेंगे।"

देश के बड़े-बड़े नेताओं की जेल जाने की रोचक कहानियाँ सुनी पढ़ी हैं। ऐसी दूसरी कहानी किसी ने पढ़ी हो तो प्रकाशित हो जानी चाहिए।

महात्मा मुंशीराम उस दिन शहीद न हो सके– यह घटना महाराज के संन्यास धारण करने से कुछ वर्ष पहले की है। यह घटना केवल मेरे द्वारा लिखित ग्रन्थ 'जीवन यात्रा स्वामी श्रद्धानन्द' में सप्रमाण मिलेगी। महात्मा मंशीराम कुछ अस्वस्थ थे। रेल में रात्रि समय यात्रा कर रहे थे। वह लेटे हुए सो गये। एक अंग्रेज के मन में न जाने क्या आया कि उसने उनका गला दबाकर उन्हें मारने का प्रयास किया। महात्मा जी ने उसे झट से उठकर धर दबोचा। उसे पुलिस ने पकड़कर बन्दी बना लिया। यह महात्माजी की शूरता व साहस की एक अद्भुत घटना है। महात्मा मुंशीराम जी के जीवन में निडरता की ऐसी और भी अनेक घटनायें मिलती हैं। इन पंक्तियों के लेखक ने सप्रमाण उनके जीवन चरित्र में दी हैं। बड़े दुर्भाग्य की बात है कि आर्यसमाज ने ऐसे इतिहास के प्रचार में कतई कोई प्रयास नहीं किया। दो-चार रटी रटाई घटनायें उनके बलिदान पर्व पर उगल दी जाती हैं। यह घटना कई पत्रों में भी छपी थी।

''**गोराशाही की करतूत**''- इस शीर्षक से उनकी जीवनी में इस सेवक ने उनका एक सम्पादकीय दिया है? ऐसे शीर्षक से अंग्रेजी राज में गोराशाही पर टिप्पणी करने की कितनी लीडरों ने हिम्मत दिखाई? सद्धर्म प्रचारक में यह सम्पादकीय छपा था।

जब गोरे सैनिकों ने उत्पात मचाया- महात्मा जी एक बार रात्रि समय (या प्रभात काल) अम्बाला रेलवे स्टेशन पहुँचे। आपने जिस गाड़ी से आगे जाना था उसी के भारतीय यात्रियों की शराबी गोरे सैनिकों द्वारा पिटाई से प्लेटफार्म पर निर्मम पिटाई के कारण पिटने वालों की चीत्कार सुनकर आर्यसमाज के इस महान् नेता ने उस प्लेटफार्म पर जाने का अद्‌भुत जोखिम उठाया। स्टेशन का स्टाफ वहाँ जान बचा कर लुकता छिपता फिरता था। महात्मा मुंशीराम ने गोरे शराबी सैनिक के बीच में जाकर उनसे बातचीत की। उन्होंने महात्मा जी की दाढ़ी के कारण इन्हें सिख समझा। उनसे सुरापान विषय पर चर्चा की। स्त्रियाँ भी गोरे सैनिकों की क्रूरता से अपनी जान बचाने के लिए लुक छुप रही थीं। किसी भी गोरे शराबी सैनिक या अधिकारी का देव दयानन्द संन्यासी के दुलारे प्यारे महात्मा मुंशीराम पर हाथ उठाने का साहस न हुआ। आज सनातन धर्म की दुहाई देने वाले शासकों को महात्मा मुंशीराम शूर शिरोमणि का नाम लेने की भी हिम्मत नहीं।

आर्यसमाज इस इतिहास का प्रचार न करके बहुत बड़ा पाप कर रहा है। यहाँ अत्यन्त संक्षेप से हमने यह घटना दी है।

लाला लाजपतराय की भविष्यवाणी- सन् १९०७ में लाला लाजपतराय जी ने देश से सर्वप्रथम निष्कासित होने का इतिहास रचा। माण्डले में बन्दी बनाये जाने से कुछ पहले आपने देश के युवकों, नेताओं व संन्यासियों को देशसेवा, स्वराज्य संग्राम में कुछ कर दिखाने के लिए एक ऐतिहासिक भाषण देकर प्रबल प्रेरणा दी। उसी भाषण में आपने एक प्रबल प्रेरणा संन्यासी महात्माओं को दी। उस प्रेरणा को एक भविष्यवाणी कहना चाहिए। तब लाला जी ने कहा था-

''**देश हित में, स्वराज्य संग्राम में संगीनों से जो छाती अड़ा दे वह संन्यासी कहाँ है?**''

दुर्भाग्य से देश के स्वराज्य संग्राम के इतिहास तथा लाला जी के जीवन चरित्र से यह व्याख्यान ही उड़ा दिया गया। इससे बड़ा अपराध और क्या होगा? इस भाषण के मात्र बारह वर्ष पश्चात् शूरता की शान महान् संन्यासी स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गोराशाही की संगीनों के सामने छाती के बटन खोलकर गोरे सैनिकों को अपनी छाती में संगीनें घोंपने व गोली चलाने की ललकार लगा कर एक नया इतिहास रचकर दिखाया।

तब लालाजी विदेश में थे। आपने वहाँ से स्वामी जी को एक भावपूर्ण पत्र लिखकर इस इतिहास रचने पर यह ऐतिहासिक वाक्य लिखा था, ''**मुझे आप पर अभिमान है**'' अभिमान होता भी क्यों न? लाला जी की बारह वर्ष पहले की भविष्यवाणी उन्हीं के धर्मबन्धु ने इतने स्वल्प काल में अक्षरश: साकार करके दिखा दी। ईश्वर की कृपा और महापुरुषों के आशीर्वाद से मैंने यह गुम किया गया लालाजी का व्याख्यान कहीं से खोज लिया है।

लालाजी के व्याख्यानों के संग्रह का मेरे द्वारा हिन्दी अनुवाद 'विचार वाटिका लाला लाजपतराय' छपने पर कभी देशवासी इसे पढ़ सकेंगे।

स्वामी जी की शूरता की क्या-क्या घटना यहाँ दी जावे। लोकमान्य तिलक के ऐतिहासिक लेखों पर सरकार ने अभियोग चलाकर उन्हें काल कोठरी में डाला। देश भर में किसी पत्रकार व नेता को कोर्ट के निर्णय (जज द्वारा लोकमान्य को दण्डित करने) की निन्दा करने या झुठलाने का साहस न हो सका।

देशभर में इकलौता पत्रकार- महात्मा मुंशीराम ही देश का ऐसा इकलौता पत्रकार था जिसने अपने सद्धर्म प्रचारक पत्र के सम्पादकीय में यह लिखा था,

''सरकार के कोर्ट ने भले ही लोकमान्य तिलक को दोषी मानकर उन्हें जेल में डाल दिया है, परन्तु भारतीय जनता का न्यायालय रूप हृदय उन्हें निर्दोष ही मानता है।'' सद्धर्म प्रचारक में छपा वह ऐतिहासिक सम्पादकीय 'जीवन यात्रा स्वामी श्रद्धानन्द' में पाठक शब्दश: पढ़ सकते हैं।

जब निशाने पर महात्मा मुंशीराम थे- सुप्रसिद्ध समाज सेवी साहित्यकार श्री सन्तराम ने अपनी आँखों देखी एक ऐतिहासिक घटना का वर्णन करते हुए लिखा है कि श्री लाला लाजपतराय के देश से निष्कासन के काल में गोराशाही आर्यसमाज को कुचलने पर जब तुली हुई थी तब आर्यसमाज बच्छोवाली लाहौर के वार्षिकोत्सव पर बहुत बड़ी संख्या में श्रोता एकत्र हुए। श्री महात्मा मुंशीराम जी को सुनने के लिए आर्यजन बहुत उत्सुक थे। पुलिस ने आर्यसमाज को घेर रखा था। लोग अनुभव कर रहे थे कि पुलिस गोली भी चला सकती है। कई जन पकड़े जा सकते हैं। महात्मा मुंशीराम जी तो पुलिस के निशाने पर थे ही। उनको सर्वप्रथम पकड़ा जावेगा।

ऐसे भय व आतंक के वातावरण में श्रोताओं में से एक भी व्यक्ति डर कर वहाँ से नहीं भागा। महात्मा मुंशीराम जी का व्याख्यान सुनने को हर कोई उत्सुक था। ईश्वर विश्वासी महात्मा मुंशीराम के हृदयस्पर्शी व्याख्यान ने आर्यसमाज को अनुप्राणित कर दिया। इस व्याख्यान ने सरकार को भी झकझोर कर रख दिया। आर्यसमाज में महात्मा जी ने नवजीवन का संचार कर दिया। वहाँ न तो गोली चली और न किसी पर लाठी चली। कोई बन्दी भी न बनाया गया। न महात्मा मुंशीराम जी को भी जेल में डाला गया। स्मरण रहे कि श्री सन्तराम तब बी.ए. के विद्यार्थी थे। वह डट कर वहाँ श्रोता के रूप में खड़े रहे। इस उत्सव पर महात्मा जी को सुनकर वह और दृढ़ आर्यपुरुष बन गये। इस उत्सव पर महात्मा जी की हुँकार ने आर्यसमाज के इतिहास को एक नया मोड़ दिया। आर्यसमाज में खरे खोटे की पहचान हो गई। महात्मा जी के व्याख्यान ने आर्यसमाज को नये-नये तप:पूत दिये जिन्होंने आर्यसमाज के लिए जीवन भर सतत साधना की। किस-किस का नाम लिया जावे?

लाहौर का आग्नेय सम्पादक- उसी काल की एक स्वर्णिम घटना है कि श्री महाशय कृष्ण जी ने लाला लाजपतराय जी के देश से निष्कासन पर अत्यन्त निडरता से एक सम्पादकीय 'परीक्षा की घड़ी आ गई' अपने साप्ताहिक 'प्रकाश' में लिखा था। इस लेख को लन्दन के एक पत्र के सम्पादक ने अनूदित करके इंग्लैण्ड से छापते हुए श्री महाशय कृष्ण जी पर तीखी लेखनी चलाकर 'A Fiery Editor of Lahore' लाहौर का एक आग्नेय सम्पादक शीर्षक से लेख छपा। तब इस लेख के कारण देशवासी समझ रहे थे कि महाशय कृष्ण के विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करके उन्हें कालकोठरी में डाला ही जावेगा।

उस घड़ी महात्मा मुंशीराम जी तन तानकर महाशय कृष्ण जी का केस लड़ने के लिए मैदान में उतर आये। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ही ऐसे प्राणवीर नेता थे जो अपने समर्पित आर्यसेनानियों के साथ एक-एक आर्यपुरुष और एक-एक घटना के लिए सिर तली धर कर हर मोर्चे पर लड़ रहे थे।

सन् १८५७ के विप्लव के पश्चात् पटियाला के दर्जनों आर्यों पर राजद्रोह का पहला भीषण केस चलाया गया। बन्दी बनाये गये गई आर्यों के घर में दुर्घटनायें घट गईं। एक भी आर्यवीर ने गिड़गिड़ा कर सरकार से क्षमा न मांगी। यह कोई छोटी बात नहीं है। आर्यसमाज पटियाला के सेवक आर्यवीर खण्डू सैनी को तब एक बार नहीं दो बार जेल में डाला गया। वह न तो डरा और न दबा तथा न ही समाज को छोड़ा। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी और पं. चमूपति जी ने उस प्राणवीर खण्डू सैनी की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। महात्मा मुंशीराम के इस वीर सैनिक की इन पंक्तियों के लेखक ने जीवनी लिखकर छपवा दी।

स्वामी श्रद्धानन्द जी की उस काल की यहाँ क्या-क्या घटना दी जावे? जोधपुर के आर्यसमाज को अपना ध्वज उतारने का सरकार ने आदेश दिया। महात्मा मुंशीराम जी ने आर्यों से कहा, "आपने स्वयं अपना झण्डा नहीं उतारना। देखेंगे सरकार क्या करती है। महाराज प्रतापसिंह का गुणगान जीवनभर करने वाले लेखक ने कहीं यह घटना नहीं दी।"

धौलपुर (राजस्थान) की एक छोटी सी स्टेट है। वहाँ के आर्यसमाज मन्दिर को ढाहकर वहाँ शौचालय बनाया गया। तब राजस्थान से बाहर के आर्यवीर जत्थे लेकर सत्याग्रह करने पहुँचने लगे। तब भला यह कैसे सम्भव था कि स्वामी श्रद्धानन्द जी धौलपुर स्टेट से टक्कर लेने न पहुँचते। महात्मा नारायण स्वामी जी तथा महाराज श्रद्धानन्द दोनों ही धर्मरक्षा के लिए धौलपुर पहुँचे। स्टेट को आर्यसमाज से समझौता करना पड़ा।

केरल में सत्याग्रह- वायक्कुम नाम के एक छोटे नगर के एक बड़े हिन्दू मन्दिर के चारों ओर की सड़क पर जन्म के जाति भेद के कारण कुछ विशेष हिन्दू जातियाँ ही आ जा सकती थीं। इस घृणित भेदभाव के विरुद्ध अपने बलिदान से कोई तीन चार वर्ष पूर्व स्वामी श्री श्रद्धानन्द जी ने सत्याग्रह चलाकर यह भेदभाव का कलंक मिटा दिया।

केरल के एक शिरोमणि लोकप्रिय नेता श्री मन्नम ने एक साक्षात्कार में मुझे सगर्व बताया था, "मैं वायक्कम सत्याग्रह का स्वामी श्रद्धानन्द का सैनिक हूँ। उस सत्याग्रह में भाग लेने वाले कई केरलीय सत्याग्रही आगे जाकर केरल के यशस्वी नेता बन गये। गांधी जी इस भेदभाव के विरुद्ध थे, परन्तु आपने सत्याग्रह में कोई सहयोग न किया। बातों में ही टाल गये।"

दक्षिण में अस्पृशयता विरोधी अभियान- स्वामी श्रद्धानन्द ने दक्षिण भारत में अस्पृश्यता निवारण व दलितोद्धार के लिये एक व्यापक व सघन यात्रा निकाली। आप केरल, मद्रास, कर्नाटक, आन्ध्र व तेलंगाना की जनजागरण यात्रा करते हुए जन्म की जातिपांति तथा अस्पृश्यता के उन्मूलन का सन्देश देते हुए सारे दक्षिण में घूम गये। आपने पं. धर्मदेव जी, केशवदेव जी अपने कई गुरुकुलीय स्नातकों को दक्षिण में अपना कार्य केन्द्र बनाकर जनजागरण व समाज सुधार का अविस्मरणीय कार्य किया। आप कुछ वर्ष और जीवित रहते तो दक्षिण से इस कलंक का बहुत कुछ उन्मूलन हो जाता।

साहित्यकार क्रंथ ने दक्षिण भारत के मन्दिरों से देवदासी कुप्रथा के उन्मूलन के लिए गांधी जी को दर्दीले दिल से एक पत्र लिखा। बाल तथा युवा विधवायें जो देवदासी के रूप में मन्दिरों में चढ़ाई जाती वे वेश्या बनकर समाज को भी प्रदूषित करती और स्वयं भी नारकीय जीवन बिताती। गांधी जी ने उन्हें लिखा कि सदाचारपूर्वक जीवन बिताना चाहिए। यह उत्तर तो बात को टालने के सिवा कुछ नहीं था। निराश होकर श्री क्रन्थ ने स्वामी श्रद्धानन्द को इस विषय में पत्र लिखा।

स्वामी जी उन दिनों रुग्ण थे। आपने श्री पं. इन्द्र जी से एक पत्र लिखवा कर उन्हें भेजा। वेदशास्त्रों से प्रमाणों को उद्धृत करते हुए उनके पुनर्विवाह का आन्दोलन चलाकर स्वामी जी यह कलंक मिटाना चाहते थे। क्रंथ जी को स्वामी का उत्तर पहुँचते-पहुँचते श्री स्वामी जी एक उन्मादी मुसलमान की गोली का शिकार होकर धर्म की वेदी पर जीवन बलिदान कर गये।

श्री क्रंथ जी ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है कि सामाजिक कुरीतियों, ऐसे जातीय व राष्ट्रीय दोषों का उन्मूलन करने का जोश, लगन व साहस जो स्वामी श्रद्धानन्द जी में था वह किसी और नेता में नहीं। इसे देश का दुर्भाग्य ही मानना पड़ेगा। स्वामी जी के उर के अरमानों पर इससे अधिक कोई क्या कहे? भावी पीढ़ियों के समाजसेवी युवकों को स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन का अनुकरण करके कल्याण मार्ग का पथिक बनना होगा।

वेदसदन, नई सूरज नगरी, अबोहर, पंजाब

महर्षि को समर्पित व्यक्तित्व
श्री पं. भगवद्दत्त जी

-डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

जन्म २७ अक्टूबर १८९३ ई.। माता- श्रीमती हरदेवी जी, पिता- लाला चन्दनलाल जी।

पं. भगवद्दत्त जी जन्मत: आर्यसमाजी थे, क्योंकि इनके पिताजी तथा माताजी दोनों ने स्वामी दयानन्द जी के दर्शन ही नहीं किये, अपितु उनके प्रवचनों को सुनकर १८७८ ई. में अमृतसर आर्यसमाज के सभासद् बन गये थे। १९२५ ई. में मथुरा में जब ऋषि दयानन्द की जन्मशताब्दी मनाई गई थी, तब ऋषि दयानन्द के प्रत्यक्ष द्रष्टा और उनके प्रवचनों के श्रोता ३४ (चौंतीस) स्त्री-पुरुष १८ फरवरी १९२५ ई. को मंच पर उपस्थित किये गये। उनमें श्री भगवद्दत्त जी की माताजी भी थीं। पं. भगवद्दत्त जी ने 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' के प्राक्कथन में अपना परिचय लिखा है-'मेरा जन्म सन् १८९३ ई. के अक्टूबर मास की २७ तारीख को पंजाबान्तर्गत अमृतसर नामक नगर में हुआ था। मेरे पिता का नाम लाला चन्दनलाल और माता का नाम श्रीमती हरदेवी है। मेरी माता इस समय जीवित हैं। सन् १९१३ ई. में बी. ए. श्रेणी में पग रखते ही मैंने संस्कृत भाषा का अध्ययन आरम्भ किया। उससे पूर्व में विज्ञान पढ़ता रहा था। सन् १९१५ में बी.ए. पास करके मैंने वेदाध्ययन को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। इसका कारण श्री लक्ष्मणानन्द जी का उपदेश था। योगिराज लक्ष्मणानन्द जी के सत्संग का मुझ पर गहरा प्रभाव पड़ा है। सन् १९१२ के दिसम्बर के अन्त में उनका देहावसान हुआ था, परन्तु उनकी सारगर्भित बातें मेरे कानों में आज तक गूंज रही हैं। उनकी श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी में अगाध भक्ति थी। वे तो योगाभ्यास में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के शिष्य थे।

दयानन्द कॉलेज लाहौर से बी.ए. पास करके मैंने लगभग छ: (6) वर्ष तक इसी कॉलेज में अवैतनिक काम किया। तत्पश्चात् श्री महात्मा हंसराज जी की कृपा से मई १९२१ में, मैं इस कॉलेज का जीवन सदस्य बना। मास मई सन् १९३४ तक मैं इस कॉलेज के अनुसंधान विभाग का अध्यक्ष रहा। इन १९ वर्षों के समय में मैंने इस विभाग के पुस्तकालय के लिए लगभग ७००० हस्तलिखित ग्रन्थ एकत्र किये। इन ग्रन्थों में सैकड़ों ऐसे हैं, जो अन्यत्र अनुपलब्ध हैं। मुद्रित पुस्तकों की भी एक चुनी हुई राशि मैंने इस पुस्तकालय में एकत्र कर दी थी। इसी पुस्तकालय के आश्रय से मैंने इन १९ वर्षों में विशाल वैदिक और संस्कृत वाङ्मय का अध्ययन किया। यह अध्ययन ही मेरे जीवन का एकमात्र उद्देश्य बना रहा है। इसके लिए जो-जो कष्ट और विघ्न बाधाएँ मैंने सही हैं, उन्हें मैं ही जानता हूँ।

पं. भगवद्दत्त का प्राचीन वाङ्मय से सम्बद्ध लेखन

जिन ग्रन्थों के कारण पण्डितजी को अन्तरराष्ट्रीय ख्याति मिली, वे हैं-तीन भागों में प्रकाशित 'वैदिक वाङ्मय का इतिहास' तथा 'भारतवर्ष का बृहद् इतिहास' (दो भाग)।

(१) वैदिक वाङ्मय का इतिहास का प्रथम भाग १९९१ वि.सं. (मार्च १९३५ ई.)

(२) वैदिक वाङ्मय का इतिहास का द्वितीय भाग-१९९४ वि.सं.

(३) वैदिक वाङ्मय का इतिहास का तृतीय भाग १९९८ वि.सं.।

ये तीनों भाग लाहौर से प्रकाशित हुए। पं. भगवद्दत्त के दिवंगत होने बाद उनके विद्वान् पुत्र पं. सत्यश्रवा: ने

इन तीनों भागों को क्रमशः सन् १९७८, १९७४ तथा १९७६ ई. में प्रकाशित किया। प्रथम भाग में वेदों की विविध शाखाओं का अनुसंधानपूर्ण इतिहास प्रस्तुत है। द्वितीय भाग में ब्राह्मण और आरण्यक ग्रन्थों का विशद विवरण और मूल्यांकन है। तृतीय भाग में वेदभाष्यकारों का परिचय तथा समीक्षाएँ हैं। वैदिक वाङ्मय के इतिहास से सम्बन्धित अनेक मूल्यवान् तथ्यों पर इस इतिहास में पहली बार प्रकाश डाला गया है। इनका महत्त्व इसी एक बात से सिद्ध हो जाता है कि इसके प्रकाशन के बाद पचासों लेखकों ने इस विषय पर लिखे अपने ग्रन्थों में इसकी बहुत सी सामग्री ज्यों की त्यों उद्धृत कर ली है। पं. सत्यश्रवाः जी ने स्वसम्पादित संस्करण में 'इतिहास' के प्रत्येक भाग में ७५ से लेकर १२५ पृष्ठों तक की नई सामग्री जोड़ी है, जिसे मूल लेखक ने अपने जीवन के संध्याकाल तक संशोधित तथा परिवर्धित सामग्री के रूप में संगृहीत कर रखा था। सम्पादक का अपना शोध अध्ययन भी संयोजित है और 'विद्वान् पिता के विद्वान् पुत्र' की लोकोक्ति को चरितार्थ करने वाला है।

पण्डित जी की दूसरी महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'भारत वर्ष का बृहद् इतिहास' (दो भाग) है।

(४) भारतवर्ष का बृहद् इतिहास (प्रथम भाग) का प्रथम संस्करण वि.सं. २००८ में तथा द्वितीय संस्करण वि.सं. २०१८ में छपा। तृतीय संस्करण जुलाई १९९४ ई. में छपा है, जिसका सम्पादन पं. सत्यश्रवाः (पण्डित जी के सुपुत्र) ने किया है। (५) भारतवर्ष का बृहद् इतिहास (द्वितीय भाग) का प्रथम संस्करण वि.सं. २०१७ में छपा था। द्वितीय संस्करण २००० ई. में पं. सत्यश्रवाः जी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ है। भारतीय इतिहास लेखक जिस काल को प्रागैतिहासिक (Pre Historic) कहकर उपेक्षित करते हैं अथवा Mythological कहकर इतिहास की संज्ञा देने में भी संकोच करते हैं, उसे व्यवस्थित करने का श्रेय पं. भगवद्दत्त जी को जाता है। प्रो. पार्जिटर के बाद भगवद्दत्त ही प्रथम भारतीय विद्वान् हैं, जिन्होंने पुराणों में प्राप्त राजाओं की वंशावलियों का परीक्षण, अध्ययन तथा विश्लेषण किया। भगवद्दत्त जी ने उन पाश्चात्त्य लेखकों एवं उनका अनुसरण करने वाले भारतीय विद्वानों से लोहा लिया, जो जानबूझकर भारतीय मूल्यों की उपेक्षा एवं अवमानना करते थे। (६) भारतवर्ष का इतिहास (गुप्त साम्राज्य के अन्त तक) शीर्षक से एक संक्षिप्त इतिहास भी पं. भगवद्दत्त जी ने लिखा, जिसमें इतिहास का क्रम मात्र जोड़ा गया है। सुप्रसिद्ध घटनाओं का अति संक्षिप्त विवरण देते हुए तिथि-क्रम को ठीक करने में ही सर्वाधिक प्रयत्न किया गया, जिसका प्रथम संस्करण वि.सं. १९९७ (१९४० ई.) में प्रकाशित हुआ था। द्वितीय संस्करण भी पण्डित जी के जीवन काल में ही पर्याप्त नई सामग्रियों के साथ वि.सं. २००३ (दिसम्बर १९४६ ई.) में छपा। इसका तृतीय परिवर्तित संस्करण वि.सं. २०५८ (२००१ ई.) में प्रकाशित हुआ। इस संस्करण के परिवर्धक तथा सम्पादक पं. सत्यश्रवाः जी हैं। (७) निरुक्त भाषा-भाष्य, प्रथम संस्करण (१९६४ ई.), द्वितीय संस्करण (२००४ ई.)। (८) वेदविद्या निदर्शन, प्रथम संस्करण (१९५९ ई.), द्वितीय संस्करण (२००५ ई.)। (९) भाषा का इतिहास, प्रथम संस्करण (१९५६ ई.), द्वितीय संस्करण (१९५७ ई.)। तृतीय परिवर्धित तथा परिष्कृत संस्करण १९६४ ई. में छपा। इसी का नवीन संस्करण 'विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द नई दिल्ली' ने २०१२ ई. में प्रकाशित किया है। (१०) भारतीय संस्कृति का इतिहास, प्रथम संस्करण (१९६५ ई.), इसका नवीन संस्करण 'विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द' ने २०१० ई. में प्रकाशित किया है। (११) प्राचीन भारतीय राजनीति (१२) ऋग्वेद पर व्याख्यान (१३) ऋङ्मन्त्र-व्याख्या (१४) उद्गीथाचार्यकृत ऋग्वेद भाष्य (दशम मण्डल का कुछ भाग) (१५) वैदिक कोषः (हंसराज-भगवद्दत्त), इस कोष के संकलनकर्ता डी.ए.वी. पुस्तकालय अनुसंधान विभाग के पुस्तकाध्यक्ष पं. हंसराज जी की सहायता से

पं. भगवद्दत्त ने इस वैदिक कोष को तैयार किया था। प्रारम्भ में पण्डित जी लिखित महत्त्वपूर्ण भूमिका कोष-सम्बन्धी शोध निबन्ध ही है। इसका पुनः मुद्रण 'राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान नव देहली' ने २००२ ई. में किया है। पण्डित जी द्वारा वैदिक वाङ्मय के अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सम्पादित हैं। जैसे- (१६) अथर्ववेदीय-पंचपटलिका, (१७) अथर्ववेदीया माण्डूकी शिक्षा, (१८) चारायणीय शाखा, (१९) मन्त्रार्षाध्याय, (२०) आथर्वण ज्योतिष। (२१) धनुर्वेद का इतिहास तथा आचार्य बृहस्पति के राजनीति सूत्रों की भूमिका (२२) 'बार्हस्पत्य सूत्र की भूमिका' भी उनकी उल्लेखनीय कृति है। (२३) वाल्मीकीय रामायण के बाल, अयोध्या तथा अरण्य काण्ड के पश्चिमोत्तर पाठ (काश्मीरी) संस्करण का सम्पादन भी उनका एक महत्त्वपूर्ण कार्य था। (२४) 'Western Indologists: A Study in Motives' (प्रकाशन-१९५४ ई.) में लेखक ने विल्सन, मैक्सूलर, वेबर, मोनियर विलियम्स, गार्वे तथा विण्टरनिट्ज आदि पाश्चात्त्य संस्कृतज्ञों के वेद तथा प्राच्य अध्ययन विषयक ईसाई पूर्वाग्रहों को उजागर किया है। (२५) 'Extra ordinary Seientific Knowledge in vedic works' का प्रणयन पण्डित जी ने १९६३ ई. में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलन (दिल्ली) के अवसर पर किया था। आपकी अन्तिम कृति 'Story of Creation-as seen by Seers' शीर्षक थी, जो आपके निधन के दो मास पूर्व ही प्रकाशित हुई। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपने संस्मरणों में ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रेरणा के लिए पं. भगवद्दत्त के प्रति कृतज्ञता व्यक्त की है।'

विशिष्ट लेख-

१. वैजवाप गृह्यसूत्र संकलन।

२. शाकपूणि का निरुक्त और निघण्टु।

३. शूद्रक-अग्निमित्र-इन्द्राणीगुप्त ।

४. साहसाङ्क विक्रम और चन्द्रगुप्त विक्रम की एकता।

५. Date of Visv'varupa.

6. आर्य वाङ्मय।

7. अश्वशास्त्र का इतिहास।

8. कल्पसूत्र।

9. भारतीय प्राचीन राजनीति पर भाषण।

सप्तम आर्य महासम्मेलन मेरठ (२००८ वि.सं.-१९५१ ई.) के अन्तर्गत 'राजनीति-सम्मेलन' के अध्यक्ष के रूप में पं. भगवद्दत्त जी का भाषण, जिसे इस सम्मेलन के स्वागत मन्त्री लाला कालीचरण जी ने २००८ वि.सं. में प्रकाशित किया।

छोटे-बड़े लेखों और निबन्धों की गणना सुलभ नहीं है।

१०. मनुष्य मात्र का परम मित्र स्वायंभुव मनु।

रामलाल कपूर ट्रस्ट (सोनीपत-हरयाणा) ने इसे पुस्तिका का रूप देकर १९९४ ई. में प्रकाशित किया है।

ऋषि दयानन्द की जीवनी, सत्यार्थ प्रकाश तथा पत्र विज्ञापन पर कार्य

ऋषि दयानन्द के प्रति आपकी दृढ़ भक्ति थी। फलतः स्वामी जी विषयक आपका शोध व अध्ययन कम महत्त्व का नहीं है। ऋषि दयानन्द के पत्रों तथा विज्ञापनों (सूचनाओं) का सम्यक् संकलन और व्यवस्थित कर प्रकाशन का कार्य आपने अपने हाथों में लिया। स्वामी श्रद्धानन्द, पं. चमूपति, महाशय मामराज का सहयोग लेकर स्वामी जी के पत्रों व विज्ञापनों का संग्रह प्रथमतः १९१८, १९१९ तथा १९२७ ई. में आपने लाहौर से प्रकाशित किया। ऋषि के पत्रों की खोज जारी रही। २०१२ वि.सं. (१९५५ ई.) में इसका द्वितीय परिवर्धित संस्करण अमृतसर से आपके निर्देशन में छपा। इस ग्रन्थ के सम्पादकीय में उल्लिखित आपके अमूल्य

निर्देशों का स्थायी और ऐतिहासिक महत्त्व ऋषि-जीवनी के अध्येताओं के लिए सदा ही बना रहेगा।

स्वामी दयानन्द द्वारा स्वलिखित संक्षिप्त प्रारम्भिक जीवनी के तीन अंशों को कर्नल अल्कॉट ने दि थियोसोफिस्ट पत्र के तीन अंकों (अक्टूबर १८७९, दिसम्बर १८७९ तथा नवम्बर १८८० ई.) में प्रकाशित किया था। मैडम एच.पी. ब्लैवेट्स्की इस पत्र की सम्पादिका थीं। ४ अगस्त १८७५ ई. को ऋषि ने पुणे (पूना) में अपने अन्तिम प्रवचन में स्वजीवन की प्रमुख प्रमुख घटनाओं की चर्चा की थी। इनका आधार लेकर पं. लेखराम ने स्वलिखित 'महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन चरित्र में' तत्सम्बद्ध घटनाओं का वर्णन किया है। पं. भगवद्दत्त जी ने इन सभी सामग्रियों का संकलन कर सूक्ष्मेक्षिका से पूर्ण व्यवस्थित तथा सम्पादित करके एक आदर्श संस्करण प्रस्तुत किया है, जिसका अनेक बार प्रकाशन रामलाल कपूर ट्रस्ट ने किया है।

ऋषि दयानन्द के प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में मान्यता प्राप्त सत्यार्थ प्रकाश का सम्पादन पण्डित जी के ऋषि विषयक कार्यों में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वैदिक यन्त्रालय अजमेर, श्री जगदेव सिंह सिद्धान्ती तथा स्वामी वेदानन्द तीर्थ द्वारा सम्पादित व प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश के संस्करणों का तुलनात्मक अध्ययन भी पं. भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित सत्यार्थ प्रकाश की एक अन्य विशेषता है। इस ग्रन्थ की भूमिका में पण्डित जी ने किसी भी प्राचीन या अर्वाचीन ग्रन्थ के सम्पादन में उपलब्ध हस्तलेखों तथा ग्रन्थ लेखक के जीवनकाल में प्रकाशित संस्करण के आधार पर किस रीति से उसका शुद्धतम सम्पादन किया जाए? इस पर बहुत ही महत्त्वपूर्ण विचार लिखे हैं। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों का मौलिक तथा प्रामाणिक संस्करण के सम्पादन तथा प्रकाशन में पं. भगवद्दत्त द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चल कर ही सफलता पाई जा सकती है।

पं. भगवद्दत्त जी को वैदिक तथा संस्कृत वाङ्मय का व्यापक अध्ययन था, इसके साथ ही अंग्रेजी भाषा पर प्रबल अधिकार भी। पं. गुरुदत्त विद्यार्थी. के सम्पूर्ण साहित्य (जो परिनिष्ठित तथा साहित्यिक अंग्रेजी में लिखा गया है) का भाषानुवाद पं. भगवद्दत्त ने हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक पं. सन्तराम बी.ए. के सहयोग से गुरुदत्त ग्रन्थावली के रूप में राजपाल एण्ड सन्सं, लाहौर से १९१८ ई. में प्रकाशित कराया था।

पण्डित जी की सहधर्मिणी पंजाब प्रान्त की शास्त्री-परीक्षोत्तीर्ण प्रथम विदुषी महिला थीं। पुत्री, पुत्र और जामाता भी पण्डित जी के इच्छानुकूल चलने वाले विद्वान् उत्तराधिकारी थे। आजीविका के लिए आपकी पत्नी ने लाहौर में हिन्दी-संस्कृत के अध्ययन-केन्द्र के रूप में महिला महाविद्यालय की स्थापना की थी। आपने अपने जामाता कविराज सूरमचन्द्र जी के साथ मिलकर आयुर्वेद का इतिहास भी प्रथम बार लिखा। प्रो. ए.बी. कीथ, प्रो. सिल्वाँ लेवी आपके अन्तरंग मित्रों में थे। पं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु, डॉ. कुन्हन् राजा तथा डॉ. पाण्डुरंग वामन काणे प्रभृति विद्वानों से आपकी परम आत्मीयता थी। आपके सतत सान्निध्य के कारण पं. युधिष्ठिर मीमांसक आपके वास्तविक उत्तराधिकारी बन गये। पं. भगवद्दत्त जी का निधन २२ नवम्बर १९६८ ई. को हो गया।

पाद टिप्पणियाँ

१. श्रीमद् दयानन्द जन्म शताब्दी वृत्तान्त (नवम परिच्छेद स्वामी जी के समकालीन पुरुषों के दर्शन और भाषण), पृष्ठ-२१५। १३वीं संख्या पर 'श्रीमती हीरा देवी जी (माता पं. भगवद्दत्त जी पंजाब) उल्लिखित है। पं. भगवद्दत्त जी ने अपनी माता का नाम 'हरदेवी' लिखा है।

२. वैदिक वाङ्मय का इतिहास (प्रथम भाग), लेखक-पं. भगवद्दत्त, प्राक्कथन (पृष्ठ-क) हिन्दी भवन प्रेस, अनारकली लाहौर, प्रथम संस्करण, मार्च १९३५ ई.।

३. ''ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रेरणा मुझे सबसे पहले पं. भगवद्दत्त से ही मिली।... सम्पादन और अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली क्या है, इसे भी उनके सत्संग से मैंने सीखा। अनुसंधान के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण मेरा उसी समय बन गया था।''-जिनका मैं कृतज्ञ (राहुल सांकृत्यायन), पुस्तक का २५वाँ अनुक्रम-पं. भगवद्दत्त, पृष्ठ-१२३-१२५, किताब महल, इलाहाबाद, १९९४ ई.।

सहायक सामग्री

१. 'वेदवाणी' का ''पं. भगवद्दत्त विशेषांक'' (नवम्बर १९९४ ई.), प्रकाशक- रामलाल कपूर ट्रस्ट (सोनीपत-हरयाणा)।

२. 'वेदवाणी' का ''पाश्चात्त्य मत परीक्षणांक'' (नवम्बर १९५५ ई.), प्रकाशक- रामलाल कपूर ट्रस्ट (मोतीझील-वाराणसी)।

३. पं. भगवद्दत्त जी रिसर्च स्कॉलर (प्रा. राजेन्द्र जिज्ञासु), प्रकाशक-विजय कुमार गोविन्दराम हासानन्द, नई दिल्ली, २०११ ई.।

ऋषि दयानन्द के चरणों में

[ये उद्‌गार स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपनी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग का पथिक' महर्षि दयानन्द सरस्वती- जिनका उनके जीवन निर्माण में महत्त्वपूर्ण योगदान था को समर्पित करते हुये व्यक्त किये थे।]

ऋषिवर! तुम्हें भौतिक शरीर त्यागे ४१ वर्ष हो चुके, परन्तु तुम्हारी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय-पट पर अब तक, ज्यों की त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते तुम्हारे स्मरण-मात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। तुमने कितनी गिरी हुई आत्माओं की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है। परमात्मा के बिना, जिनकी पवित्र गोद में तुम इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है? परन्तु अपने विषय में मैं कह सकता हूं कि तुम्हारे सहवास ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन लाभ करने योग्य बनाया?

मैं क्या था, इसे इस कहानी में मैंने छिपाया नहीं। मैं क्या बन गया और अब क्या हूँ? वह सब तुम्हारी कृपा का ही परिणाम है। इसलिये इससे बढ़कर मेरे पास तुम्हारी जन्म-शताब्दि पर और कोई भेंट नहीं हो सकती कि तुम्हारा दिया आत्मिक जीवन तुम्हें ही अर्पण करूं। तुम वाणी द्वारा प्रचार करने वाले केवल तत्त्ववेत्ता ही न थे, परन्तु जिन सचाइयों का तुम संसार में प्रसार करना चाहते थे उनको क्रिया में लाकर सिद्ध कर देना भी तुम्हारा ही काम था। भगवान् कृष्ण की तरह तुम्हारे लिये भी तीनों लोकों में कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह गया था, परन्तु तुमने भी मानव-संसार को सीधा माग दिखलाने के लिये कर्म की उपेक्षा नहीं की।

भगवन्! मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, उस ऋण से मुक्त होना चाहता हूँ। इसलिये जिस परम पिता की असीम गोद में तुम परमानन्द का अनुभव कर रहे हो, उसी से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे तुम्हारा सच्चा शिष्य बनने की शक्ति प्रदान करें।

आवश्यक सूचना

परोपकारी के सुधि पाठकों से निवेदन है कि कृपया अपना नाम व पते के साथ दूरभाष संख्या भी अंकित करावें ताकि परोपकारिणी सभा के आगामी कार्यक्रमों से सम्बन्धित सूचनाएँ आपको दूरभाष पर मैसेज के माध्यम से भेजी जा सकें। **परोपकारिणी सभा दूरभाष संख्या - ८८९०३१६९६१**

अस्पृश्यता प्रगति में बाधक है

-स्वामी श्रद्धानन्द

[स्वामी श्रद्धानन्द जी ने सन् १९२४ में ''हिन्दू संगठन'' नाम से एक पुस्तिका लिखी थी। प्रस्तुत लेख इसी पुस्तिका का अंश है। अस्पृश्यता की समस्या आज भी उतने ही ज्वलन्त रूप में विद्यमान है, जितनी कि उस समय थी। अत: इस लेख का वर्तमान में भी समान महत्त्व है, जब कि देश के कोने-कोने से हिन्दुओं के धर्म परिवर्तन की घटनाएँ, प्राय: रोज सुनने में आ रही है।]

हिन्दुओं में प्रचलित अस्पृश्यता का अभिशाप उनके सम्मान पर एक बट्टा है और उनके इस पाप का दुष्परिणाम सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्र भुगत रहा है। जब कभी हमारे राजनीतिक नेता स्वराज्य की माँग पेश करते हैं तो उनके सामने उनके पापों को रखकर उनका मुंह बन्द कर दिया जाता है। जो लोग अपने ही समाज के एक तिहाई लोगों को गुलाम बनाये हुये हों और उन्हें पैरों तले कुचल रहे हों, उन्हें विदेशियों द्वारा किये गये अत्याचारों के विरुद्ध शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये अस्पृश्य अथवा अछूत कौन हैं? क्या वे दक्षिणी अफ्रीका के जुलु लोगों के देश से आये थे अथवा नरक की जलती हुई अग्नि में से बाहर धकेल दिये गये थे? कम से कम वे स्वर्ग से नहीं ही गिराये गये, वह तो उनकी अवस्था से भली-भाँति प्रकट है। यदि थोड़े धैर्य से और पक्षपातशून्य होकर खोज की जाये तो यह अच्छी प्रकार सिद्ध किया जा सकता है कि अछूतों के और तो और भंगियों और घेड़ों के भी गोत्र वही है जो तीन उच्चवर्गी कहे जाने वाले सवर्ण हिन्दुओं के हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इनका भी मूल उद्‌गम स्थान वही है जहाँ से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रकट हुए हैं। बहुत सम्भवत: उनके नैतिक पतन के कारण उन्हें सामाजिक दृष्टि से भी निम्न वर्ग में धकेल दिया गया। यदि वे रहन सहन को सुधार लेते हैं और नैतिक दृष्टि से ऊपर उठने लगते हैं तो उन्हें अपनी पुरानी स्थिति प्राप्त करने से कोई नहीं रोक सकता। यह एक सीधा-सादा सत्य है जिसकी हिन्दुओं ने शताब्दियों से उपेक्षा की है। महाप्रभु चैतन्य, कबीर, नानक, दादू, गुरु गोविन्द तथा कुछ अन्य सुधारकों ने हिन्दुओं के इस पाप के विरुद्ध आवाज उठाई, परन्तु उनकी वाणियाँ बहरे कानों में पड़ी। तब एक बाल ब्रह्मचारी का प्रादुर्भाव हुआ और उसने गुंजायमान शब्दों से हिन्दुओं में कर्त्तव्य की भावना उत्पन्न की और सम्पूर्ण आर्यजगत् की हड्डियों तक को कंपा दिया। यह सुधारक था महर्षि दयानन्द सरस्वती प्रत्येक मनुष्य के समानाधिकार का दावा किया और समाज को गुण कर्म के अनुसार चार वर्णों में विभाजित करने की आवाज उठाई। जब यह महान् आचार्य कार्यक्षेत्र में उतरा तब हिन्दुत्व धाराप्रवाह रूप में ईसायत में विलीन होता चला जा रहा था। उसने एक बुलन्द और आध्यात्मिक आवाज में रुकने का आदेश दिया और प्रवाहित होती धारा एकदम रुक गई। पथप्रष्ट लोगों को पथ का निर्देश किया, देहरादून के मुंशी मुहम्मद उमर को पुन: ग्रहण करके अलखधारी नाम रखा। इसके बाद तो उन सैकड़ों हिन्दुओं का जो कि लालच आदि द्वारा सार्वजनिक वैदिक अक्षय वृक्ष की छाया से दूर हटा दिये थे पुन: आर्यधर्म में खींच लिया।

परिणामत: उच्च वर्ग के हिन्दुओं का विरोधी धर्मों में प्रवेश एक भूतकालीन वस्तु हो गई। जब महर्षि दयानन्द ब्राह्मधाम को प्रस्थान कर गये तब आर्यसमाज ने अपने आचार्य के काम को उठाया। तब ईसाई मिशन के दुराग्रही हिन्दुओं द्वारा पीड़ित अछूत वर्ग को पॉल के धर्म में परिवर्तित करने को सोचा। यह एक सरल और सीधा-सादा कार्य था। एक बार रामचरण चमार की चोटी

कटी, उसके माथे पर पानी से क्रॉस के चिन्ह बनाये गये, उसने गोमांस खाना शुरू कर दिया, उसका नाम पीटर जॉन अथवा पॉल रख दिया गया, उसे उसी कालीन पर बैठने का अधिकार प्राप्त हो गया, उसी कुएँ से पानी खींचने का अधिकार मिल गया जिनका उपयोग सवर्ण हिन्दू करते हैं और तो और वह ब्राह्मणों से हाथ भी मिलाने लगा। चमार, धेड़, डोम और पारसी हजारों की संख्या में ईसाइयत को अपनाने लगे। तब इस समस्या की ओर आर्यसमाज का ध्यान आकृष्ट हुआ और आर्यसमाज ने इन पथभ्रष्ट लोगों को इनके पथ पर लाना शुरू किया तथा आर्यसमाजियों ने लोगों को प्रश्रय और अभय देना, अपने धर्म को छोड़कर जाने वाले दलितों को शुद्ध करना आरम्भ कर दिया।

इस शुद्धि आन्दोलन का कट्टर हिन्दुओं द्वारा प्रबल विरोध किये जाने के कारण यह प्रतीत होने लगा कि अछुतोद्धार का कार्य लगभग असम्भव हो जायेगा, परन्तु आर्यसमाज ने हलपर अपना दृढ़ हाथ रखकर भूमि के सुधार के बीज बोये जा सकने योग्य बनाना नहीं छोड़ा। सबसे प्रथम रहतियों की सामूहिक शुद्धि की गई। यह सिक्खों का एक वर्ग था, परन्तु खालसा लोग भी इन्हें अपने साथ दरी पर बैठने का अधिकार नहीं देते थे। सिक्ख धर्म के संस्थापक श्री गुरु गोविन्दसिंह ने स्वयं इस वर्ग को "कृपाण" द्वारा तैयार अमृत पिलाकर सिक्ख धर्म में दीक्षित किया था। सन् १८९६ के मध्य में इस वर्ग के लोगों ने अपनी शुद्धि के लिये प्रार्थना की और अगले कुछ ही मासों में एक हजार से भी अधिक व्यक्ति आर्यसमाज में भाइयों के रूप में प्रविष्ट कर लिये गये। इन लोगों को पूर्ण सामाजिक और धार्मिक अधिकार प्रदान किये गये। पहले-पहले तो आर्यसमाजियों को अनेक कष्ट दिये गये, और आर्यसमाजियों का सामाजिक एवं जाति बहिष्कार किया गया। परन्तु १८९८ के अन्त तक यह विरोधभाव समाप्त हो गया और लगभग एक हजार रहतिये हिन्दू समाज में खपा लिये गये।

१९०२ में आर्यसमाज ने स्यालकोट (पंजाब) में मेघों के उद्धार का प्रश्न अपने हाथ में लिया । इन मेघों को भी अछूत समझा जाता था। पहले तो यहाँ भी इस कार्य का तीव्र विरोध किया गया। हिन्दुओं द्वारा इन नये आर्यसमाजियों को इस कार्य को पीड़ित करने के कार्य में मुसलमान भी सम्मिलित हो गये थे, परन्तु जब डेढ़ लाख से अधिक व्यक्ति अन्य कार्यों के समान अधिकार भोगने लगे तो यह विरोध अपनी से प्राकृतिक मृत्यु से मर गया और तब मुजफ्फरगढ़ और मुलतान जिले के ओड़, पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों के डोम हजारों की संख्या में शुद्ध किये गये। एवं मेघों के उद्धार के लिये जम्मू और काश्मीर रियासत में तथा अन्यत्र आन्दोलन किया गया। परिणाम ४० हजार से भी अधिक आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये और अब तक वे आते जा रहे हैं। इस प्रकार पंजाब पथ प्रदर्शन करता रहा है और पिछली सेंसर रिपोर्ट (१९२१) से पता चलता है कि संयुक्त प्रान्त के आगरा और अवध का ईसाई मिशन इस बात की शिकायत करने लगा है कि उनके द्वारा संचालित धर्म-परिवर्तन के कार्य में आर्यसमाजियों द्वारा रुकावटें डाली जाती हैं।

दिल्ली तथा उसके आस-पास, आर्यसमाज उन सैकड़ों अछूतों को पुनः हिन्दू धर्म में ले आया जो केवल नाममात्र के ईसाई थे। हजारों धनकों, चमारों, रहगड़ों और भंगियों तक को भविष्य में ईसाइयों के होने वाले आक्रमणों से बचा लिया। ईसाई मिशनरियों ने तो निराश होकर यह धर्म परिवर्तन का कार्य ही छोड़ दिया होता, यदि उन्हें अप्रत्याशित रूप से सहायता न मिल गई होती।

हिन्दुओं के सामूहिक रूप से धर्म-परिवर्तन के लिये अत्यधिक उत्साही होते हुये भी मुसलमानों को अपना यह काम छोड़ देना पड़ा और उनका यह कार्य भाग्य के सहारे और अति सूक्ष्म ढंग से होने लगा। सेंसर रिपोर्ट से यह स्पष्ट हो जाता है कि १९११ से पंजाब में तथा अन्यत्र मुसलमान भंगियों की संख्या कम हो गई है, जबकि अनुपात से हिन्दू भंगियों की संख्या बढ़ गई है।

संयुक्त प्रान्त के सम्बन्ध में १९११ की सेन्सर रिपोर्ट के पृष्ठ ५४ पर कहा है- इस्लाम में धर्म परिवर्तन के उदाहरण इतने विरल हैं कि उनकी उपेक्षा की जा सकती है, परन्तु असहयोग आन्दोलन के पूर्ण यौवन के दिनों में जब महात्मा गाँधी ने स्वराज्य प्राप्त करने की शर्तों में एक शर्त यह भी रख दी कि अछूत वर्ण को हिन्दुओं में पूर्ण रूप से मिला लिया जाये और उनका उद्धार किया जाये तो मुसलमान नेताओं ने इसे एक स्वर्ण अवसर समझा और अछूतों को इस्लाम में दीक्षित करने का एक आयोजन प्रारम्भ कर दिया।

मेरे लिये तो अस्पृश्यता के अभिशाप को उखाड़ फेंकना भारतीय राष्ट्रीयता की सुरक्षा के लिये एक आवश्यक शर्त है। अखिल भारतीय महासभा (काँग्रेस) के ३४वें अधिवेशन की स्वागत समिति के अध्यक्ष पद से २७ दिसम्बर १९१९ को अमृतसर में बोलते हुये मैंने राष्ट्रीयता को संकट में से निकालने के लिये राष्ट्रीय शिक्षण और अस्पृश्यता-निवारण इन दो साधनों पर बल दिया था। अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध में मैंने कहा था-"राष्ट्र में एक वस्तु की कमी है। यह क्या है? मुक्ति मेला (साल्वेजन आर्मी) के जनरल बूथकर ने "सुधार योजना-समिति" के सम्मुख अपने वक्तव्य में कहा था कि साढ़े छ: करोड़ भारतीय अछूतों को विशेष सुविधा दी जानी चाहिये, क्योंकि वे ब्रिटिश सरकार के आधार स्तम्भ है। मैं आपसे निवेदन करूंगा की आप इस वक्तव्य के अन्तस्तल में घुसकर जानने का प्रयत्न करें कि वे साढ़े छ: करोड अछूत सरकार के आधार स्तम्भ कैसे बन सकते हैं? जबकि आप इस पवित्र पण्डाल में इकट्ठे हुये हैं तो मैं आपसे प्रार्थना करूंगा कि आप यह शपथ उठायें कि इन अछूतों के प्रति आपका व्यवहार इस प्रकार का हो कि उनके बच्चे आपके बच्चों के साथ कॉलेज और स्कूलों में पढ़ सकें, आप उन्हें अपने परिवारों में उसी प्रकार घुलने-मिलने दीजिये जिस प्रकार आप स्वयं अपने परिवारों में घुलते-मिलते हैं। इसका परिणाम यह होगा कि वे आपकी राजनीतिक और प्रगति में आपके साथ अपने कन्धे भिड़ाकर चल सकेंगे। देवियों और सज्जनो? आप मेरे साथ मिलकर हृदय से प्रार्थना कीजिये कि मेरा यह स्वप्न सत्य सिद्ध हो"

अमृतसर के काँग्रेस अधिवेशन के बाद मैंने गुरुकुल का कार्य संभाल लिया, परन्तु जब काँग्रेस का कलकत्ते में विशेष अधिवेशन हुआ तो मैं केवल मात्र इस कारण उसमें सम्मिलित हुआ, क्योंकि मैंने स्वागत समिति को एक प्रस्ताव भेजा हुआ था। जिसमें उस महान् राष्ट्रीय असेम्बली से यह प्रार्थना की गई थी कि कांग्रेसी प्रोग्रामों की सूची में अछूतोद्धार के कार्यक्रम को सम्मिलित कर ले, परन्तु दुर्भाग्य से उस प्रस्ताव पर विषय-समिति तक में विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

नागपुर के काँग्रेस अधिवेशन से पूर्व महात्मा गांधी मद्रास गये थे। वहाँ दलित-जाति के लोगों ने अपनी स्थिति के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्रश्न गांधी जी से किये कि वे हकला गये और उसके बाद स्वराज्य प्राप्ति के लिये यह भी शर्त लगा दी कि १२ मास के अन्दर-अन्दर अस्पृश्यता दूर कर दी जानी चाहिये।

मैंने दिल्ली में दलितोद्धार सभा का संगठन किया और महात्मा गांधी को कार्यसमिति से आर्थिक सहायता दिलाने के लिये तार दिया। परन्तु बाद में मुझे पता लगा कि काँग्रेस इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकती है। ९ सितम्बर १९२१ को एक पत्र हिन्दी में महात्मा जी को लिखा था। उसका कुछ भाग इस प्रकार है-

मैंने लाहौर से तार दिया था कि मैं चाहता हूं कि प्रान्तीय काँग्रेस कमेटी द्वारा आर्थिक सहायता दी जाये। परन्तु दिल्ली पहुंचने पर मुझे ज्ञात हुआ कि काँग्रेस के लिये अछूतोद्धार कार्य के लिये व्यय करना असम्भव है। दिल्ली और आगरा के चमारों की केवल मात्र यह माँग थी कि उन्हें कुंओं से पानी भरने दिया जाये, जिनसे हिन्दू और मुसलमान दोनों पानी भरते हैं और उन्हें पानी पत्तों द्वारा न पिलाया जाया करे। मैं अनुभव करता हूँ कि

काँग्रेस कमेटी के लिये केवल इस मांग को पूरा कर सकना सम्भव नहीं। केवल इतना ही नहीं, मैंने जिस काँग्रेसी मुसलमान से इस कार्य के लिये सहायता मांगी, उसने उत्तर दिया कि यदि सार्वजनिक कुंओं से हिन्दुओं ने अछूतों को पानी भरने की आज्ञा भी दी, तो मुसलमान उन्हें बल-प्रयोग द्वारा कुंओं से भगा देंगे, क्योंकि चमार मुर्दा पशुओं का मांस खाते हैं। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि इन चमारों में से हजारों शराब और मांस को छूते भी नहीं है और जिन्हें मुर्दा मांस खाने की लत पड़ भी गई है अब वे भी आर्यसमाज के प्रचार और जिसे स्वरूप अपनी इस आदत को छोड़ते जा रहे हैं। मैंने यह पत्र आपको केवल सूचना देने के लिये लिखा है कि अब मैं काँग्रेस कार्यसमिति से आर्थिक सहायता के लिये प्रार्थना नहीं कर सकता। मैं अपने सीमित स्रोतों के अनुसार जो कुछ कर सकता हूँ, वह सब करूंगा।''

एक अवसर और उपस्थित हुआ जब मैंने लखनऊ में होने वाले काँग्रेस के अधिवेशन के समय यह प्रयत्न किया कि काँग्रेस सच्चे हृदय से अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को अपने हाथ में ले ले, परन्तु इस पत्र व्यवहार का कुछ परिणाम नहीं निकला। इस पत्र-व्यवहार को मैंने ''माइ पार्टिंग एडवांइस'' के नाम से कुछ समय पूर्व प्रकाशित कर दिया था और वहाँ देखा जा सकता है।

*** निवेदन ***

कीर्तिशेष आचार्य धर्मवीर जी ने अपने दानदाताओं के सहयोग से ऋषि उद्यान में निरन्तर चलने वाले ऋषि लंगर की व्यवस्था की थी, जो सतत संचालित हो रही है। इसमें ऋषि उद्यान की वृहद् भोजनशाला में **ऋषि उद्यान में निवास करने वाले योगसाधकों, संन्यासियों-वानप्रस्थियों, ब्रह्मचारियों व आचार्यों के भोजन, दुग्ध, फल इत्यादि की व्यवस्था की जाती है।**

ऋषि उद्यान में आने वाले अतिथियों, विद्वानों, दर्शनार्थियों इत्यादि के निवास तथा भोजनादि की व्यवस्था इसके अन्तर्गत संचालित की जाती है।

आर्य दानदाता-परिवारों के सहयोग से ही यह अतिथि-यज्ञ सम्भव हो पा रहा है। अत: हम सभी आर्य परिवारों का दायित्व एवं कर्त्तव्य है कि हम इस यज्ञ में होता बनकर निरन्तर दान-रूपी आहुति प्रदान कर पुण्य के भागी बनें। विभिन्न संस्कारों एवं अन्य शुभावसरों पर अपनी दान-रूपी आहुति देना न भूलें, ताकि यह लोकोपकारी अतिथि यज्ञ निरन्तर चलता रहे।

इस अतिथि यज्ञ हेतु आप **५१००/-(पाँच हजार एक सौ रुपये) प्रतिवर्ष** भेजकर अपना सहयोग प्रदान कर अनुग्रहीत करें।

ओम्मुनि — **कन्हैयालाल आर्य**
प्रधान — **मन्त्री**

विशेष सूचना

१. योग शिविर - २१ से २७ फरवरी २०२५ को सभा द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में योग शिविर का आयोजन किया जा रहा है। शिविर में भाग लेने के इच्छुक सज्जन सम्पर्क करें -

ऋषि उद्यान - **९४१३३५६७२८** **परोपकारिणी सभा - ८८९०३१६९६१**

२. स्थापना दिवस - परोपकारिणी सभा का स्थापना दिवस २७ फरवरी २०२५ को ऋषि उद्यान, अजमेर में आयोजित किया जा रहा है। **(मन्त्री) - कन्हैयालाल आर्य ९९११९९७०७३**

स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान पर-

स्वामी का स्वामी से मिलाप

-पं. नारायणप्रसाद 'बेताव'

मरते-मरते भी हमें मरना सिखाकर चल दिये।
यह अमर जीवन का नुसखा था बताकर चल दिये।।१।।
आपकी हस्ती थी या तस्वीरे इस्तकलाल थी।
गोलियाँ पिस्तौल की सीने पै खाकर चल दिये।। २।।
कब तमंचे से कलेजे में हुए सूराख चार।
चार आश्रम को निभा और दिखाकर चल दिये।। ३।।
लग गई अब खून की धारों से पक्की दागबेल।
वीर पुत्रों के लिये रास्ता बनाकर चल दिये।। ४।।
केस शुद्धि का न अब तनसीख के काबिल रहा।
फैसिले पर खून की मुहरें लगाकर चल दिये।। ५।।
अब चलीं शुद्धि के पौदे की जड़ें पाताल को।
खूने दिल से बाग्वाँ पानी लगाकर चल दिये।। ६।।
हासिदों को था शराकत और असालत पर गरूर।
आजमाना था उन्हें बस आजमा कर चल दिये।। ७।।
देखकर कातिल को अपने महज बुज़दिल, जन खिलास।
हथकड़ी की चूड़ियाँ कर में पिन्हा कर चल दिये।।८।।
कोई माँ का लाल हो अब आये सज्जादा नशीं।
आप तो मठ में पवित्रासन बिछाकर चल दिये।। १०।।
देख लो आशा का लाशा और मनोरथ का विमान।
चार दिन जो मोहिनी मूरत दिखाकर चल दिये।। ११।।
आ गया था बन के अग्नी-बाण अग्नी का पयाम।
यूं शरण में अग्नि की आनन्द पाकर चल दिये।। १२।।
हो गये "बेताब" श्रद्धानन्द स्वामी जब शहीद।
धैर्य और सन्तोष सब दामन छुड़ा कर चल दिये।। १३।।
मुद्दआ यह था न औरों पर पड़े गर्दा गुबार।
धर्म के पथ में लहू अपना बहाकर चल दिये।। १४।।

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर महर्षि दयानन्द सरस्वती की २००वीं जन्म-जयन्ती शताब्दी समारोह के उपलक्ष्य में ५० प्रतिशत की छुट

पुस्तक का नाम	वास्तविक मूल्य रुपये
विवाह पद्धति	२०
शिक्षापत्रीध्वान्त निवारण	०२
वेदान्तिध्वान्त निवारण	०२
समाधी	१००
सामवेद शतक	३०
जिज्ञासा विमर्श	१००
इतिहास प्रदूषण	१००
इतिहास साक्षी	५०
वेदामृत	५०
सत्यासत्य निर्णय	२५
The Book of Prayer	35
Kashi Debate	20
A Critique of Swami Naryan Seet	20
An Examination of Vallabh Seet	20
Five Great Rituals of The Day	20
Bhramaccheden	25
Bhranti Nivarana	35
Atmakatha	20
Gokarunanidhi	12
Dayanand Interparetation of Vedas	05
संध्या सुरभि कलेण्डर	३५
महर्षि दयानन्द की शिक्षाएँ कलेण्डर	२५
The Pre Islamic Religious of Arabia	20
वेदमाता	१००
शंका समाधान	७०
ईश्वर	१५०
नवयुग की आहट	६०
वैदिक इस्लाम	१०
पं. आत्माराम अमृतसरी	१००
इतिहास बोल पड़ा	१००
मृत्यु सूक्त	२००
सत्यार्थ सुधा	१५०

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-

दूरभाष-0145-2460120, चलभाष- 7878303382

महात्मा मुंशीराम जी और गुरुकुल की स्मृतियाँ

-श्री रैम्जे मैकडानल्ड

[सन् १९१३ में श्री रैम्जे मैकडानल्ड- जो उस समय ब्रिटिश पालियामेंट में मजदूर दल के नेता थे और बाद में वहाँ के प्रधानमंत्री बने- भारत आये थे और उन्होंने ८ नवम्बर १९१३ को गुरुकुल का भी अवलोकन किया था। उन्होंने अपनी इस गुरुकुल-यात्रा के संस्मरण लिखे थे, जो 'डेली क्रानिकल' में प्रकाशित हुए थे। उन्हीं स्मृतियों का हिन्दी अनुवाद यहाँ प्रस्तुत है।]

जिन्होंने भारतीय राजविद्रोह का अध्ययन किया है उन्होंने गुरुकुल- जहाँ आर्यसमाज के कुमारों को शिक्षा दी जाती है का नाम अवश्य सुना होगा। यह शिक्षणालय आर्यों की वृत्तियों और आदर्शों का सबसे अधिक अनुरूप प्रतिबिम्ब है और इस प्रगतिशील धार्मिक संस्था (आर्यसमाज) के विरुद्ध उठाये गये सभी सन्देह इस पर केन्द्रित हो गये हैं। इसी कारण सरकार की इस पर वक्र दृष्टि रही है। पुलिस के कर्मचारियों ने इस पर रिपोर्ट तैयार की है तथा अधिकांश अर्धगोरों के दोषारोषों का यह पात्र रहा है। मुझे बताया गया कि रात्रि में यात्रा करके, सप्ताह के अन्तिम दिनों में इस शिक्षण संस्था का अवलोकन मेरे लिये बहुत अनुकूल रहेगा। मैं दिल्ली से हरिद्वार जाने वाली एक गाड़ी में, जिसकी चाल मध्यवर्ती स्टेशनों पर विराम करने के कारण अनुमानतः दस मील प्रति घण्टा रही होगी, सवार हुआ। निद्रा लाने का प्रयत्न करते हुये जैसे-तैसे रात कटी।

प्रभात बेला में हरिद्वार पहुंचा, जहाँ गंगा नदी पर्वतों की गोद छोड़कर नीचे मैदान में उतरी है। स्टेशन आत्मिक पापशुद्धि की विश्वव्यापिनी और शाश्वत पिपासा से प्रेरित तीर्थ यात्रियों से भरा पड़ा था। यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा था कि इनमें से बहुत से लोग बहुत दूर से आये हुये हैं। वृक्षों से ढकी हुई पहाड़ियाँ शीष उठाये खड़ी थीं। पवन इंगलिस्तान के शिशिर काल के प्राभातिक झोंकों-सा तन को काटता हुआ बह रहा था। हमने पैदल ही यात्रा प्रारम्भ की। नदी तीर पर पहुँचते ही सामने का दृश्य खुल गया। समीपवर्ती पहाड़ियाँ, महान् हिमालय के हिममंडित शिखरों के चरणों में सविनय साष्टांग प्रणिपात करती हुई-सी दीख रही थीं। सरिता की एक-एक तरंग, अधित्यका का एक-एक गुल्म, और एक-एक हिममंडित प्रदेश सूर्य की स्वर्णमयी आभा से भासमान था।

किनारे के पत्थरों पर एक तमेड़ (बाँस की खपच्चियों से सुबद्ध, मिट्टी के तेल के पीपों का एक बेड़ा) रखी थी। इस पर बैठा कर हमें धारा में डाला गया। दूसरे ही निमेष में हम मध्यधारा में पहुँच गये। गहरे जल में हम निशंक बह रहे थे। अकस्मात् नदी की तली हमारे नीचे साथ-साथ सरकती हुई मालूम हुई। तमेड़ झटके के साथ टकराई। पानी छीटों में उड़ा। नन्हा बेड़ा तत्क्षण ही झाल में होकर गहरे जल की भंवरियों तथा लहरियों में पड़कर पूर्ववत् स्थिर हो गया। चक्कर देती हुई झूले खिलाती हुई और छीटें उड़ाती हुई नदी अपने भार को वेग से लिये जा रही थी। बन्दर हमें देखकर दाँत किटकिटाते थे। वन के अद्भुत दृश्य क्षण भर झाँकी दिखा कर दूसरे ही क्षण लम्बी झाड़ियों में मुँह छिपा लेते थे। एक रेतीली खाड़ी में हम उतरे और एक उत्तप्त और बालुकामय मार्ग से वन में प्रविष्ट हुये। हमारे सिरों से कहीं ऊँची पीली घास खड़ी थी। पर्वतीय शीतल पवन की हिलोरें अब बन्द हो गई थी, सूर्य का ताप शनैः शनैः दुःसह होता जा रहा था। अन्त को हम वृक्षों से अंशतः आच्छादित एक लम्बी और सीधी सड़क पर पहुँचे। सुदूर, एक उन्नत बाँस के सिरे पर, एक पताका दीख पड़ी। गुरुकुल

दृष्टिगोचर होने लगा।

गुलाब और चमेली के पुष्पों से सुवासित मार्गों से भोजनालय और पुष्पवाटिकाओं में से होकर गुरुकुल पहुँचते हैं। चारों ओर क्रीड़ा क्षेत्र है। मध्य में वर्गाकार छात्रावास स्थित है। सिंह द्वार (प्रवेश द्वार) पर वेदों के सनातन सूत्र पवित्र ''ओ३म्'' नाम से अंकित ध्वजा फहराती है। सम्प्रति यहाँ ३०० बालक शिक्षा पा रहे हैं। प्रवेश के समय इन की उम्र अनिवार्यत: ६-१० वर्ष के अन्दर होनी चाहिये। पच्चीस वर्ष की आयु तक उन्हें यहाँ रहना होता है। उन्हें मुंशीराम जी (जो कि अब ''महात्मा जी'' इस उपनाम से प्रसिद्ध हैं) के न्यायोचित संरक्षण में छोड़ दिया जाता है। वह उनके पिता हैं और ये उनके बालक। चार बजे प्रात: वे अपनी कठोर चीड़ के तख्तों की शय्या छोड़ कर उठ बैठते हैं, व्यायाम करते हैं और शीतल जल से स्नान करते हैं। तब प्राभातिक संध्या (प्रार्थना) होती है। उष्ण ऋतु में नंगे सिर, नंगे पाँव चलते हैं।

''संभव है, उन्हें संयोगवश कभी कठोर जीवन व्यतीत करना पड़े। अत: हमें उनको इसके लिये अभ्यास कराना चाहिये'' महात्मा जी ने मुस्कराते हुये मुझे कहा । पीताम्बर शिक्षणालय का गणवेश है। यहाँ रहते हुये विद्यार्थी अपने माता-पिता को बहुत कम देख पाते हैं, परन्तु यहाँ विद्यालय भूमि में प्रति वर्ष एक बड़ा मेला (उत्सव) भरता है। सहस्रों की संख्या में जनता आती है। माता-पिता इसमें सम्मिलित होते हैं। विशेष झोंपड़ियाँ तैयार की जाती हैं। प्राचीन अंग्रेजी मेलों की-सी भीड़ एकत्र होती है। दीर्घावकाश में बालकों को उनके अध्यापक भारत भूमि के प्रसिद्ध स्थानों में ले जाते हैं। इन यात्राओं में वे कश्मीर तक भी हो आये हैं।

शासक वर्ग के मानस और दृष्टि के लिये, यह सब एक अशान्तिजनक समस्या है। कार्यकर्त्ताओं और अध्यापकों में कोई अंग्रेज नहीं, अंग्रेजी शिक्षा का माध्यम नहीं, पंजाब विश्वविद्यालय द्वारा भारतीयों की उच्च शिक्षा के मूल स्तम्भ के तौर पर निर्दिष्ट अंग्रेजी-साहित्य की पाठ्यपुस्तकें यहाँ प्रयुक्त नहीं होतीं, विद्यार्थी सरकारी विश्वविद्यालयों में नहीं भेजे जाते। महाविद्यालय अपनी ही पदवियाँ देता है। यथार्थत: यह कानून भंग है। आश्चर्य से स्तब्ध अधिकारियों का इसे एक ही साँस में राजद्रोह कहना अनिवार्य था, परन्तु उसे गुरुकुल पर अन्तिम निर्णय कदापि नहीं कह सकते। सन् १८३५ में मैकाले ने सहकारी पत्रक में अपने विचार प्रस्तुत किये थे। तब से भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में किये गये प्रयत्नों में यह सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। उन विचारों से भारत में प्रत्येक असन्तुष्ट है, परन्तु जहाँ तक मैं जान पाया है, गुरुकुल के प्रवर्तकों के अतिरिक्त अन्य किसी ने भी अपने असन्तोष को नवीन प्रयोग के रूप में परिणत नहीं किया है।

एक उन्नतकाय, दर्शनीय मूर्ति (प्रभावपूर्ण सौन्दर्य की प्रतिमा) हम से भेंट करने आती है। आधुनिक सम्प्रदाय का कलाकार ईसा की प्रतिकृति घड़ने के लिये आदर्श के रूप में इसका स्वागत करता है और मध्यकालिक रुचि का चित्रकार इसमें सन्त पीटर का रूप देखता। महात्मा जी हमें नमस्कार करते हैं और हम उनके अभ्रक-जटित ''ओ३म्'' नाम से अलंकृत सादा साज-सज्जा वाले कमरे में प्रवेश करते हैं। मुझे दिये गये कमरे में शुभ्र वस्त्र से ढकी मेज पर उज्ज्वल वर्ण की पत्तियों से मिश्रित, लाल फूलों से भरे, दो गुलदस्ते रखे हुये हैं। किसी अतिथि को कभी इससे अधिक मनोहर कोठरी नहीं मिली। एक सेवक हमारे हाथों पर पानी डालता है और हमें एक अंगोछा देता है। जूते बाहर कर हम एक कमरे में प्रवेश करते हैं, जहाँ भोजन परोसा गया है। महात्मा जी भोजन से पूर्व प्रार्थना करते हैं, हमारा मस्तक नत हो जाता है। मैंने अनेक प्रार्थनाएँ सुनी हैं, पर ऐसी कभी नहीं सुनी थी। हमारे यजमान की संस्कृत स्वरों पर तूल देती हुई घन-गम्भीर वाणी पापशुद्धि के आभार सम्बन्धी संगीत का

पूरा-पूरा अनुकरण कर रही है।

भोजन समाप्त होता है और हम शिक्षणालय की परिक्रमा करने को निकलते हैं। सर्वत्र सुव्यवस्था और प्रसन्नता है। उज्ज्वल चमकीले नयनों वाले बालवटु और प्रशान्त मुद्रा वाले बड़े कुमार, कहीं मिट्टी में खिलौने बनाते हुये, कहीं मिलकर अपना पाठ दुहराते हुये, कहीं श्लोक-पाठ करते हुये और कहीं अपने गुरुओं के व्याख्यान सुनते हुये (क्योंकि गुरुकुल में व्याख्यान द्वारा ही अधिकृत अध्यापन होता है) श्रेणियों में बैठे हैं। विद्यालय समाप्त होता है। तुरन्त ही ब्रह्मचारियों का, बड़ी उमंग से क्रीड़ा क्षेत्र की ओर धावा प्रारम्भ होता है। प्रत्येक छात्र गुजरता हुआ अपने आचार्य के पाँवों में झुककर और अंजलिबद्ध हाथों को उठा कर अभिवादन करता है।

दोपहर ढल जाने पर हम वन में भ्रमणार्थ जाते है। महात्मा जी हमसे सुनी गई बातों की चर्चा करते जाते हैं। वह परिधान, अंगों का वह गठन, वह चाल-ढाल, वह लम्बा दण्ड, किशोरावस्था में प्रति रविवार को प्रार्थनालय के द्वार पर देखे हुये गेलिलि के भ्रमण के दृश्य आचार्य-स्मृति कराते हैं। एक मैं ही अपने अंग्रेजी वेश में मंडली और उसके अभिनयों में उपहासास्पद हो रहा हूं। प्रतीची दिशा, अस्तोन्मुख सूर्य के प्रभामंडल से झिलमिला रही है। अर्धचन्द्र कब से ऊँचे सिर पर आकर रजत वर्ण की चन्द्रिका छिटका रहा है। रात्रि का पवन तथा उसके साथ लम्बी वनस्पतियाँ भी मौन धारण कर रही हैं। कम्पित वस्तुओं की मर्मर ध्वनि स्पष्ट सुन पड़ती है। शीत हमारे ऊपर उतर रहा है। गुरुकुल अंधकार में मग्न है। परन्तु छात्रावास के मध्य भाग में जलने वाली अग्नि शिखायें आश्रम के द्वारों में से दिखाई दे रही हैं। आंगन मन्त्रोच्चारण के शब्द से परिपूर्ण हो रहा है। घास पर चटाइयाँ बिछाकर बुद्ध की प्रतिमा-सी छोटी-छोटी शुभ्र मूर्तियाँ बैठी हैं। उनमें गति नहीं है। वे हमारी ओर दृष्टि भी नहीं उठाते। उनकी सामूहिक प्रार्थना (सन्ध्या) समाप्त हो चुकी है। अब वे अलग-अलग एकाग्रचित्त होकर ध्यान में मग्न है।

कमरे के अन्दर फर्श में स्थित एक कुण्ड में अग्नि प्रज्वलित है। चारों ओर अध्यापक वृन्द और छात्र मण्डल बैठा है। वह अपने एक प्राचीन धर्मकार्य (अग्निहोत्र) का अनुष्ठान कर रहा है। ज्वाला के हल्के प्रकाश में अपने सन्मुख रखे हुये एक पात्र में चम्मच डुबोते हुये और अग्नि में कुछ डालते हुये अधिष्ठाता को हम निहारते हैं। सहसा लौ ऊपर उठती है। एक स्वर में कोमल वाणियाँ पुकारने लगती हैं- ''सर्वज्ञ, ज्ञान के दाता, ज्योतियों के ज्योति, परमेश्वर को हम आत्मार्पण करते हैं।'' अब कुछ काल विराम होता है। ज्वाला नीचे उतरने लगती है। इतने में एक दूसरी आहुति डाली जाती है। ज्वाला पुन: लपक उठती। कमरों की भित्तियों में और छतों पर पीली आभा छा जाती है और प्रहसन के नृत्यों के से दृश्य अंकित हो जाते हैं। पुन: तोतली बोलियाँ पुकारती हैं- हे प्रभो, हम तुझे आत्मदान करते हैं, जो तू एक-एक में रम रहा है।'' इसी प्रकार क्रमश: विराम, प्रकाश और मन्त्र पाठ होता है। अन्त में यज्ञ-पाठ होता है, अग्नि शान्त हो जाती है। गुरुकुल के आंगन को प्रकाशित करने के लिये अब एक मात्र तारे रह गये।

एक बार फिर हम अपने हाथ बाहर निकालते हैं। नौकर उन पर पानी डालता है। जूते उतार कर हम उन्मुक्त पवन में, सायंकालिक भोजन के लिये चटाइयों पर बैठते हैं। हमारे चरणों में, गंगा आह्लादकारी कलकल करती हुई, पत्थरों में से होकर वेग से बह रही है, ऊँची-ऊँची घासों की ऊँची-ऊँची शिखायें चन्द्र-ज्योत्स्ना को झेल रही हैं। वन-भूमि ओस से व्याप्त हुई-सी झिलमिला रही है। **दूर बहुत दूर से आते हुये, अस्फुट वन्य शब्द भूतों और पथभ्रष्ट आत्माओं का भान कराते हैं। मानों स्वप्न में मैं किसी को कहते सुनता हूँ-**

''हमें और कुछ नहीं चाहिए। हमें शान्ति से प्रभु का भजन करने दो।'' क्या यह राजद्रोह है?

ज्ञानसूक्त - २३

प्रवचनकर्त्ता- डॉ. धर्मवीर

लेखिका - सुयशा आर्या

प्रिय पाठक! परोपकारी पिछले कई वर्षों से आपकी सेवा में डॉ. धर्मवीर जी के वेद प्रवचनों को प्रकाशित कर रही है। इसी शृंखला में ऋग्वेद १०/७१ 'ज्ञानसूक्त' की व्याख्यान माला प्रकाशित की जा रही है। प्रवचनों को लेखबद्ध करने का कार्य डॉ. धर्मवीर की ज्येष्ठ पुत्री श्रीमती सुयशा कर रही हैं।

-सम्पादक

अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो मनोजवेष्वसमा बभूवुः।
आदध्नास उपकक्षास उत्वे ह्रदा इव स्नात्वा उत्वे ददृषे।।

हम इस वेद की चर्चा में ऋग्वेद के ज्ञान सूक्त की चर्चा कर रहे हैं। यह ऋग्वेद के १०वें मण्डल का ७१वाँ सूक्त है। इस सूक्त का ऋषि बृहस्पति है और इस सूक्त के मन्त्रों का देवता ज्ञान है। इससे वेद का ज्ञान के प्रति जो दृष्टिकोण है, जो ज्ञान का स्वरूप है, उसकी हमें जानकारी होती है, क्योंकि इस संसार में और हमारे में कोई जोड़ने वाली चीज है तो वह ज्ञान ही है। यदि हमारे पास ज्ञान न हो तो हमें संसार से कोई जोड़ नहीं सकता यह बिल्कुल कुछ इस तरह से है जैसे कोई नयी वस्तु हमारे पास आती है, लेकिन उसके बारे में हमें पता कुछ नहीं है, तो वस्तु का होना न होना हमारे लिए कोई मूल्य नहीं रखता। ऐसे ही हमारे कोई वस्तु पड़ी है और हमें पहचान नहीं है कि यह पीतल है, सोना है, कीमती पत्थर है, सब की सब बातें हमारे जानने से सम्बन्ध रखती है। और तो और संसार में जिन माता-पिता से हम उत्पन्न होते हैं, उनका सम्बन्ध भी, उनकी पहचान से, उनकी जानकारी से बनता है। माँ हमें पहचान कराती है कि यह हमारा पिता है, यह हमारा चाचा है, यह हमारा मामा है, तब मनुष्य को पता लगता है कि इसका और उसका क्या सम्बन्ध है। तो एक समझने की बात यह है कि कोई यदि कहे कि ज्ञान बाद की चीज होनी चाहिए या धीरे-धीरे पैदा हुआ होना चाहिए, तो प्रश्न है कि क्या परमेश्वर की सृष्टि धीरे-धीरे पैदा हुई है। इस पर आप यदि विचार करें तो उपनिषद् का एक बड़ा रोचक मन्त्र है-

पूर्णमदः पूर्णमिदम् पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते।।

हम इस वेदज्ञान की इसमें दो विचित्र बातें हैं- एक तो यह कि परमेश्वर जो बनाता है, पूर्ण बनाता है, पूरा बनाता है, पूरे को एक साथ बनाता है। मनुष्य बनाता है तो अलग-अलग टुकड़ों में बनाता है, टुकड़ों को इकट्ठा करके बनाता है। टाटा बहुत बड़े ट्रक बनाता है, लेकिन सारे ट्रक को एक साथ भी नहीं बनाता और खुद भी नहीं बनाता। उसके बहुत से निर्माता हैं- कोई टायर बनाकर देता है, कोई लोहे का कुछ बनाकर देता है। एक-एक पुर्जे को बनाने वाली एक-एक कम्पनी है। तो उसकी जितनी मशीनें है उनमें से हर एक अंग कोई एक व्यक्ति कोई एक कम्पनी बनाती है और वो बस फिर आकर इसके यहाँ जोड़ दिए जाते हैं। तो संसार में बनाने की प्रक्रिया और ईश्वर द्वारा बनायी गयी वस्तु की प्रक्रिया में एक भारी अन्तर है। मन्त्र जब पढ़ते हैं तो यह समझ नहीं आता कि यह कह क्या रहा है। वह पूर्ण है। यह भी पूर्ण है और वह परमेश्वर इस पूर्ण से एक पूर्ण को ही पैदा कर देता है। ऐसा लगता है कि जैसे एक चीज से पूर्ण पैदा हो जाए तो वह चीज तो समाप्त ही हो जाएगी, क्योंकि सब चीजें तो उसके बनने में काम आ गयीं। यह आश्चर्य की बात लगती है, इसलिए जब इस मन्त्र का

अर्थ जानने व समझने की कोशिश करते हैं तो यहाँ समझने की बात है कि बनाना हमारा भी काम है और बनाना ईश्वर का भी काम है। लेकिन ईश्वर का बनाना 'पूर्णमद: पूर्णमिदम्' है। वह इस संसार को बनाता है तो यह पूर्ण है, वह स्वयं पूर्ण है और उसके द्वारा बनाई गयी चीजें भी पूर्ण है। अब पूर्ण किस तरह से है? जो भी वस्तु बनी उसमें कुछ भी शेष नहीं रहता। मनुष्य बना, तो पूर्ण मनुष्य बन जाता है और वृक्ष बना तो पूर्ण वृक्ष बन जाता है। मतलब उसमें कोई चीज कम या अधूरी नहीं रहती। बल्कि आप इसको ऐसा समझ सकते हैं कि वह टुकड़ों में नहीं बनाता। वो बनाकर जोड़ने का काम नहीं करता। वो वस्तु को जुड़े-जुड़ाये पूर्ण रूप से बनाता है, चाहे वह मिट्‌टी का एक ढेला ही क्यूँ न हो। उस मिट्‌टी के ढेले में भी एक साथ वह सब कुछ होगा जो उस ढेले में होना चाहिए। अन्न के एक कण में वह सबकुछ होगा जो अन्न के कण में होना चाहिए। इसदृष्टि से वह पूर्ण है, उसके द्वारा जो कुछ बनाया जाएगा वह पूर्ण है। जब उसने हमको बनाया, इस संसार को बनाया तो ऐसा बिल्कुल नहीं हो सकता कि हममें और इस संसार में कोई सम्बन्ध न बने। क्योंकि संसार हमारे लिए और हम संसार के लिए हैं इसलिए दोनों के बीच सम्बन्ध के बिना दोनों की उपस्थिति व्यर्थ हो जाती है। तो यदि किसी के पास कोई वस्तु है और कोई वस्तु चाहिए तो मेरे पास ऐसा क्यूँ है कि कुछ ही वस्तुएँ हैं। संसार में तो बहुत वस्तुएँ हैं, लेकिन संसार में मनुष्य जिसकी आवश्यकता समझता है, उपयोगिता समझता है उसको लेता है, उसको रखता है, उसको प्राप्त करना चाहता है और जिसकी उसे आवश्यकता नहीं लगती उसकी वह चिन्ता नहीं करता। तो इसलिए मनुष्य और संसार इन दोनों के साथ ही ज्ञान की उत्पत्ति माने बिना और कोई उपाय नहीं, दूसरी बात है, जब परमेश्वर ज्ञान देगा तो वह आधा अधूरा देगा ही क्यूँ? क्योंकि उसने आधी अधूरी कोई चीज दुनिया में कभी बनायी ही नहीं। तो ज्ञान आधा अधूरा क्यूँ? इसलिए उसका ज्ञान भी आधा-अधूरा नहीं हो सकता। उसने एक पूर्ण व्यक्ति, एक पूर्ण प्राणी बनाया है और उसने पूर्ण संसार बनाया है तो संसार का ज्ञान भी उतना ही पूर्ण होगा जितना संसार है, ज्ञान ही पूर्ण होगा जितना एक एक मनुष्य को संसार के ज्ञान की आवश्यकता है। इस तरह से संसार है, ज्ञान है, उसका भोक्ता व्यक्ति है, प्राणी है, उसका ज्ञान भी पूर्णता को लिए हुए है। उसमें सब कुछ हो सकता है, है।

हम इसका पिछले मन्त्रों में विचार कर चुके हैं कि वह ज्ञान हमको प्राप्त कैसे हुआ? तो अक्षण्वन्त: कर्णवन्त:। हमको भगवान् ने आंख दिए हैं, कान दिए हैं। केवल आँख और कान से तो बात नहीं बनती। तो इसलिए मन है, बुद्धि है, आत्मा है यह सब ज्ञान की प्राप्ति के आधार है। अक्षण्वन्त: कर्णवन्त: बाहर के हैं, यह मनुष्य से मनुष्य के लिए हैं, संसार में मनुष्य के लिए है। संसार के पदार्थों का उपयोग करने के लिए है यह आँख और कान के साधन से दो तरीके तो हमें पता है जिनसे मनुष्य मुख्यत: काम लेता है। अर्थात् एक मनुष्य बोलता है दूसरा सुनता है। एक मनुष्य लिखता है दूसरा पढ़ता है। जो पढ़ता है, वह अक्षण्वन्त: है, जो सुनता है कर्णवन्त है। परमेश्वर हमें कोई पुस्तक कागज की नहीं दे रहा है जिसे हम आँख से देख लें। न कोई मुंह उसका है जो हमारे कान उसके काम आ जाऐं। तीसरा उपाय जो ज्ञान देने का है वो प्रेरणा देने का है, अन्दर से देने का है। बाहर का ज्ञान शरीर से आ रहा है, वो भौतिक है। भौतिक ज्ञान को शरीर से प्राप्त करना सम्भव है किन्तु जब आत्मा से ज्ञान आएगा तो आत्मा के पास ही आएगा। ऐसा नहीं हो सकता कि आत्मा का ज्ञान, चेतन का, वो हर जड़ वस्तु को प्राप्त हो जाए। तो शरीर भी तो जड़ है और इसको भी तो आत्मा का ज्ञान मिला है, लेकिन इसे एक प्रक्रिया के अन्तर्गत मिला है, एक संरचना के क्रम में मिला हुआ है आत्मा है, बुद्धि है, मन है इन्द्रियाँ हैं, शरीर है इस तरह से मिला हुआ है। ऐसा नहीं है कि

कोई जड़ वस्तु चेतन से सीधा सम्बन्ध बना सके और उससे कोई ज्ञान प्राप्त कर सके या उससे कोई प्रेरणा ले सके, ऐसा सम्भव नहीं है परमेश्वर के द्वारा जो ज्ञान आएगा वो निर्माण के रूप में तो संसार में तो संसार में है पदार्थ के स्वरूप के रूप में विद्यमान है, प्रकाशित है, प्रकट है। लेकिन चेतना के रूप में ज्ञान आएगा तो चेतन का ज्ञान चेतन को ही प्राप्त होगा, वो आत्मा में ही आएगा, वह हमारे हृदयों में ही प्रकाशित होगा। इसलिए परमेश्वर के ज्ञान को देने का जो प्रकार है वो प्रेरणा है। हम देखते हैं संसार में तीन तरह से ज्ञान को पाया जा सकता है सुनकर, पढ़कर या प्रेरणा से। परमेश्वर जब भी कोई चीज देता है, वह न टुकड़ों में देता है, न आधी-अधूरी, न व्यर्थ देता है। जितना ज्ञान मनुष्य को पूर्ण काल में, पूर्ण जीवन में पूर्ण संसार में पूर्ण काल में आवश्यक है उतना ज्ञान परमेश्वर ने संसार के लिए दिया हुआ है जिसको हम वेद कहते हैं, ईश्वरीय ज्ञान, शाश्वत और नित्य ज्ञान कहते हैं।

यहाँ पर मन्त्र कह रहा है कि परमेश्वर का दिया हुआ ज्ञान पूरा है लेकिन हर व्यक्ति का ज्ञान अलग है और अधूरा है। तो यह अलग-अलग होना और अधूरा होना यह भी अपने आप में एक प्रमाण है कि हमारा सबका ज्ञान अलग-अलग है। अलग-अलग इसलिए हीं है कि संसार में ज्ञान के अलग-अलग स्रोत हैं। संसार की वस्तुएँ तो भिन्न-भिन्न है लेकिन वस्तुओं का निर्माता, रचयिता एक है, इसलिए ज्ञान का स्रोत भी एक ही है और इसके बाद भी हमारे ज्ञान की भिन्नता है। इतना ही नहीं एक ही विषय को जानने वाले व्यक्तियों का ज्ञान एक विषय का होने पर भी अलग-अलग स्तर का है। यह सिद्ध करता है कि ज्ञान की प्राप्ति का स्रोत है, मूल है उसके पास तो ज्ञान पूर्ण है किन्तु हमारी क्षमता अलग-अलग होने से, हमारे प्रयत्न अलग-अलग होने से प्राप्ति के उपाय, समय, परिस्थिति भिन्न होने से हमारा ज्ञान भी भिन्न-भिन्न है। एक बालक का युवा का और बूढ़े का ज्ञान। एक विषय विशेषज्ञ का और एक मजदूर का ज्ञान भिन्न है, क्योंकि इनकी परिस्थिति भिन्न है, आयु भिन्न है काम है। इसलिए वो जिससे जुड़ा हुआ है उतना वो जानता है, जान सकता है।

तो सारे संसार में हमारी जो परिस्थिति है कि वो ज्ञान इतना भिन्न है और अधूरा है, यह हमारे अपने अधूरेपन को और हमारी भिन्नता को बता रहा है। ज्ञान प्राप्त करने वाले सब एक जैसे दिखाई दे रहे हैं लेकिन एक नहीं हैं। यदि हम एक होते तो सब को एक साथ, एक जैसा ज्ञान होता और सब एक जैसा उस ज्ञान का उपयोग करते। लेकिन ऐसा नहीं है। हमारा ज्ञान एक जैसा नहीं है, एक साथ नहीं है और उसका उपयोग भी हम एक तरह से नहीं करते हैं।

अपने प्राप्त ज्ञान को उपयोग में लाने के लिए हर व्यक्ति अलग-अलग प्रकार अपनाता है। यह हमारे अलग-अलग अस्तित्व का और अलग-अलग क्षमता का सबसे बड़ा परिचायक है।

इस दृष्टि से विचार करने पर हमारे ज्ञान की हमारे अन्दर जो भिन्नता है उसका बोध इस मन्त्र से होता है। हमारे ज्ञान के साधन जो शरीर के रूप में हमें प्राप्त हैं- आँख, कान, नाक, त्वचा, जिह्वा जिनसे हम रूप शब्द, गन्ध, स्पर्श, रस का ज्ञान करते हैं और इस ज्ञान की सिद्धि एक मुख्य बात से होती है- हमारे ज्ञान के स्तर का अलग होना, हमारी भिन्न परिस्थिति से भिन्न ज्ञान का मिलना बता रहा है कि ज्ञान के अधूरेपन से हमारे अधूरेपन का बोध होता है, हमारी अल्पज्ञता हमारे एक देशित्व का बोध होता है।

इस दृष्टि से हमें यह समझ में आता है कि परमेश्वर का ज्ञान पूर्ण है और हमारे ज्ञान की अपूर्णता हमारे कारण से है। इसलिए उपनिषद् ने कहा- पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।

इस बात की व्याख्या ऋग्वेद के इस मन्त्र में **'अक्षण्वन्तः कर्णवन्तः सखायो'** इस पंक्ति में देखने को प्राप्त होती है।

परोपकारिणी सभा अजमेर के नवीन प्रकाशन रियायती मूल्यों पर

पुस्तक का नाम	पृ. सं.	वास्तविक मूल्य रुपये	छूट के साथ मूल्य रुपये
महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र-व्यवहार (दोनों भाग)	१३९२	८००	५००
महर्षि दयानन्द के हस्तलिखित-पत्र	३३६	२००	१००
कुल्लियाते आर्यमुसाफ़िर (दोनों भाग)	९३८	९५०	६००
डॉ. धर्मवीर का सम्पादकीय संकलन (तीन भाग)	८१४	५००	२५०

यजुर्वेद भाष्य (महर्षि दयानन्द सरस्वती) पृष्ठ संख्या- २१९७, चार भागों का मूल्य = १३००/-

डाक-व्यय सहित विशेष छूट पर उपलब्ध मूल्य = १०००/-

पुस्तकों हेतु सम्पर्क करें:-दूरभाष - 0145-2460120, चलभाष - 7878303382

VEDIC PUSTKALAYA
0510800A0198064
1342679A
0510800A0198064.mab@pnb

वैदिक पुस्तकालय, अजमेर से क्रय की जाने वाली पुस्तकों की राशि ऑनलाइन जमा कराने हेतु

खाताधारक का नाम - वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

(VEDIC PUSTKALAYA, AJMER)

बैंक का नाम - पंजाब नेशनल बैंक, कचहरी रोड, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-

0008000100067176

IFSC - PUNB0000800

UPI ID :

0510800A0198064.mab@pnb

श्रद्धाञ्जलि

श्रीमती शान्तीदेवी पत्नी श्री रामेश्वरलाल लाहोटी व श्रीमती हीर पत्नी श्री चन्द्रसेन हरिसिंघानी

अत्यन्त दु:ख के साथ सूचित करना पड़ रहा है कि अहमदाबाद निवासी दोनों विदुषी महिलाओं के आकस्मिक निधन से आर्यजगत् क्षुब्ध है। परोकारिणी सभा परिवार अजमेर की ओर से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि।

श्री कन्हैयालाल आर्य - मन्त्री

श्री ओम् मुनि वानप्रस्थी - प्रधान

आर्य संस्थाओं से आग्रह

आर्य समाज एवं अन्य आर्य संस्थाएं अपने निर्वाचन, वार्षिकोत्सव और योग शिविर आदि आयोजन के संक्षिप्त समाचार परोपकारी में प्रकाशनार्थ भिजवा सकते हैं।

कर्मसिद्धान्त की सर्वजनोपयोगी आर्षदृष्टि : एक पर्यालोचन

- डॉ. आशुतोष पारीक

कर्म ही जीवन, उन्नति, प्रगति और विकास है। जहाँ कर्महीनता, अकर्मण्यता है; वहाँ दु:ख, क्लेश, अभाव और विपत्तियाँ हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में महर्षि व्यास स्पष्टतया कहते हैं कि जीवित रहने के लिए और जीवन–निर्वाह के लिए कर्म करना अनिवार्य है। जो कर्म नहीं करेगा, उसका जीवन भी कठिन हो जाएगा–

''नियतं कुरु कर्म त्वं, कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः॥[१]

कर्म की अनवरत प्रक्रिया को जीवन का अभिन्न अंग बताते हुए यजुर्वेद में उद्घोषणा की गई है कि कर्म करता हुआ ही मनुष्य सौ वर्षों तक जीने की इच्छा करे। हे मनुष्य! इस प्रकार कर्मानुष्ठान द्वारा अन्यों का नेतृत्व करने वाले तुझमें कर्मों की आसक्ति उत्पन्न नहीं होगी।

ओ३म् कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति, न कर्म लिप्यते नरे॥[२]

कर्म शब्द का व्युत्पत्तिपरिचय– कर्म शब्द 'डुकृञ् करणे' धातु से 'मनिन्' प्रत्यय होने पर व्युत्पन्न हुआ है। अत: कर्म शब्द का सामान्य अर्थ है– जो किया जाए अर्थात् क्रियते यत् तत्। निरुक्तकार आचार्य यास्क कर्म के विषय में लिखते हैं–

कर्म कस्मात् – क्रियते इति सतः।[३]

वैशेषिक दर्शन में कर्म दिशा भेद से गमन, चेष्टादि अर्थों में प्रयुक्त हुआ है, वहाँ कर्म के पाँच रूप दर्शाए गए हैं–

''उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि॥[४]

आचार्य पाणिनि कर्म को परिभाषित करते हुए लिखते हैं करने वाला जिसको सबसे अधिक चाहता है, वही कर्म है।[५] अत: कर्म का कर्ता प्राथमिक रूप से सामने आता है जो कि अपनी इच्छा से जो चाहता है वही करता है।[६] अतएव वह अपने कर्म का उत्तरदाता होने से फल का भोक्ता सिद्ध होता होते हैं।

मनुस्मृति के अनुसार सांसारिक, आध्यात्मिक आदि सभी कर्म संकल्प एवं इच्छा से होते हैं, अर्थात् करने से पहले संकल्प, विचार और इच्छा उभरती है–

''संकल्पमूलः कामो वै यज्ञाः संकल्पसम्भवाः॥
अकामस्य क्रिया काचिद् दृश्यते नेह कर्हिचित्।
यद् यद्धि कुरुते किंचित्तत्तत्कामस्य चेष्टितम्॥''[७]

कार्य–कारण के भौतिक सिद्धान्त का आध्यात्मिक सन्दर्भ ही 'कर्म का सिद्धान्त' है। भौतिक दृष्टि से यह सर्वसम्मत व प्रमाणित, अटल नियम है। कारण के होने पर कार्य की स्थिति व कार्य के होने पर उसमें निहित कारणों की अवस्थिति ही 'कार्यकारणसिद्धान्त' कहलाता है। डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार कार्यकारण के सम्बन्ध में लिखते हैं– ''अवश्यम्भाविता कार्यकारण के नियम की आत्मा है। कारण का कार्य अवश्यम्भावी है, उसे टाला नहीं जा सकता।...अवश्यम्भाविता के साथ–साथ कार्यकारण का नियम एक चक्र में चलता है। कारण–कार्य को उत्पन्न करता है, वह कार्य फिर कारण बन जाता है, अपने से अगले कार्य को उत्पन्न कर देता है....।''[८]

व्यक्ति का स्वभाव, प्रकृति आदि उसको किसी न किसी कर्म में लगाए ही रखते हैं। न्यायदर्शन के वात्स्यायनभाष्य में कर्मों की विविधता को परिलक्षित करते हुए लिखा गया है कि संकल्प–विकल्परूप विचार, ईर्ष्या, द्वेष आदि मन से और सत्य–असत्य भाषण, कठोर वचन, चुगली आदि वाणी जैसी इन्द्रिय से तथा मार–पीट, चोरी आदि कर्म हाथ जैसी कर्मेन्द्रिय (शरीर) से किए जाते हैं।[९]

वर्तमान विज्ञान 'कर्म के सिद्धान्त' को नहीं मानता

क्योंकि इसे मानने पर पूर्वजन्म, पुनर्जन्मादि को भी स्वीकार करना पड़ता है किन्तु इस सन्दर्भ में इतना ही तर्क पर्याप्त है कि जो विज्ञान अभाव से भाव का उत्पन्न होना और भाव से अभाव में चला जाना नहीं मानता, वह चेतना के इस जन्म में एकाएक अकारण उत्पन्न होने और एकाएक समाप्त हो जाने को कैसे मान सकता है? वैदिक संस्कृति में 'आत्मा' कर्ता है, कर्म नहीं'; भोक्ता है, भोग्य नहीं; स्वतन्त्र है, परतन्त्र नहीं। 'कर्म सिद्धान्त' को समझने की आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं– ''भाग्य और पुरुषार्थ, आत्मतत्त्व का कर्मों के बन्धन के साथ बंधे होना तथा स्वतंत्र रूप से कार्य कर सकना– इन दोनों बातों की संगति समझने के लिये 'कर्म' को कुछ और गहराई से समझने की ज़रूरत है।''[१०]

कर्म के महत्त्व को प्रतिपादित करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है'

''तपश्चैवास्तां कर्म च.... तपो ह जज्ञे कर्मणः॥''[११]

अर्थात् सृष्टि की उत्पत्ति के मूल में कर्म और तप है। कर्म से तप की उत्पत्ति हुई और तप से सृष्टि का प्रादुर्भाव हुआ। कर्म और प्रगति की पारस्परिक सम्बद्धता को परिलक्षित करते हुए अथर्ववेद में कहा गया है–

''ओता आपः कर्मणि॥''[१२]

इसी संदर्भ में डॉ. कपिलदेव द्विवेदी लिखते हैं– ''कर्म की स्थिति सबसे ऊपर है। जहाँ कर्म है, वहाँ गति है, वहाँ जीवन है, वहाँ दुःखों का अभाव है। कर्म और गति का साक्षात् सम्बन्ध है।... जहाँ कर्म है, वहाँ सुख है; जहाँ अकर्मण्यता है, वहाँ दुःख और अभाव है।''[१३]

कर्मभेद – कर्म की विविधता प्रत्येक प्राणी के मन में विविध संकल्प–विकल्पों को उत्पन्न करने वाली होती है। अतः कर्म के विविध भेदों की अभिव्यंजना की गई है–

– पूर्वापर आधार पर कर्म के तीन भेद –

१. संचित, २. प्रारब्ध और ३. क्रियमाण।

– स्वभाव या फल के आधार पर कर्म के दो भेद –

१. शुभ कर्म/सुकर्म/ पुण्य/ अच्छे कर्म

२. अशुभ कर्म/ कुकर्म/ पाप/ बुरे कर्म

योगदर्शन में महर्षि पतंजलि ने इन्हें पुण्य और अपुण्य कहा है–

''पुण्यापुण्यहेतुत्वात्''14

– काल की दृष्टि से कर्म के चार भेद –

1. कृत एवं संचित, 2. अकृत, 3. क्रियमाण, 4. करिष्यमाण।

इन सभी कर्मों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

कृत कर्म – ऐसे कर्म जो किये जा चुके हैं किन्तु जिनका फल अभी प्राप्त नहीं हुआ है, वे ही कृत कर्म कहलाते हैं।

संचित कर्म – कृत कर्म का ही एक भेद 'संचित कर्म' है। ये संचित कर्म सुरक्षित भंडार की तरह संचित या सुरक्षित रहते हैं। ये संकटादि के समय प्राणरक्षा आदि के रूप में दिखाई देते हैं।

प्रारब्ध कर्म – ऐसे कृत कर्म जिनका फल मिल चुका है या मिलना प्रारम्भ हो गया है, उन्हें प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

अकृत कर्म – वे कर्म जो स्थूल रूप में या शरीर से नहीं किए हैं अपितु मन या विचार से किये गये हैं।

क्रियमाण कर्म – वे कर्म जो हम प्रतिदिन कर रहे हैं। इनका फल तुरन्त या भविष्य में मिलेगा।

करिष्यमाण कर्म – जिन्हें हम भविष्य में करेंगे या शीघ्र करने जा रहे हैं, वे कर्म 'करिष्यमाण कर्म' कहलाते हैं।

शुभ कर्म – कर्म की प्रकृति एवं उसके फल के आधार जो शुभ, अच्छा व पुण्यप्राप्ति का साधनरूप हो, वह शुभ कर्म कहलाता है। कुकर्म या दुष्कर्म करने वाले की सदा दुर्गति ही होती है। अतएव अथर्ववेद में कहा

गया है –

''अधमस्तु अघकृते, शपथः शपथीयते॥[१५]

अर्थात् पापकर्म करने वाले को पाप लगता है और कुवचन या गाली देने वाले को गाली देने के दंड का भुगतान करना पड़ता है। ऋग्वेद में भी कहा गया है कि कुकर्म करने वाले, आलसी और प्रमादी का पतन होता है। कोई देवता या सज्जन पुरुष उसका साथ नहीं देता–

''न देवासः कवत्नवे॥[१६]

अशुभ कर्म – जो कर्म अशुभ, बुरा व पाप का साधनरूप हो, वह अशुभ कर्म कहलाता है। वेदों में अशुभ कर्मों की घोर निन्दा की गई है। ऋग्वेद में अकर्मण्य, कामचोर और निकम्मे को ही दस्यु, चोर, दास या अधम कहकर निन्दा की गई है। साथ ही कहा है कि जो निन्दित/निषिद्ध कर्म या कुकर्म करता है, वह मनुष्य कहलाने के योग्य नहीं है। राजा का कर्तव्य है कि ऐसे असामाजिक तत्त्व को मृत्युदण्ड दे–

''अकर्मा दस्युः॥[१७]

संचित, प्रारब्ध और करिष्यमाण कर्मों से अधिक विचारणीय और मननीय पक्ष 'क्रियमाण कर्म' के सन्दर्भ में है। कार्य–कारण के सिद्धान्तानुसार तो क्रियमाण कर्म स्वतंत्र नहीं अपितु अनन्त काल से चली आ रही लड़ी की कड़ी है और ऐसा मानने वाले प्रायः भाग्यवादी (Fatalists) हो जाते हैं। वहीं दूसरी ओर क्रियमाण कर्म को कार्य–कारण सिद्धान्त से पृथक् बताकर स्वतंत्र मानने वालों का तर्क है कि हम जो चाहें कर सकते हैं, किसी पिछले बंधन से बंधे नहीं हैं। यह सिद्धान्त पुरुषार्थवादियों (Willists) का है। वहीं इस विषय में एक तृतीय मत भी है। इसे बताते हुए डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार लिखते हैं– ''कार्यकारण का नियम भौतिक जगत् का नियम है और कर्म का नियम आध्यात्मिक जगत् का नियम है। यह उस जगत् का नियम है, जहाँ 'चेतना' नामक पंचतत्वों से भिन्न सत्ता काम कर रही है।..... भौतिक जगत् स्वतंत्र नहीं है, परमात्मा को मानो तो भी, और न मानो तो भी, भौतिक जगत् कार्यकारण के महान् नियम के अधीन है, उससे इधर–उधर नहीं हो सकता। आत्मतत्त्व के साथ यह बात नहीं है। आत्मतत्त्व भौतिक पदार्थों से भिन्न है। वर्तमान विज्ञान इसे आत्मतत्त्व न कहकर 'चेतना' (Consciousness) कहता है।''[१८]

हम सब यह अनुभव करते हैं कि ये बन्धन स्वाभाविक बन्धन नहीं हैं। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बन्धनों में बंधे रहना नहीं, कार्यकारण में उलझे रहना नहीं, अपितु इस उलझन से निकल जाना ही मनुष्य स्वभाव है। अतः हमारे क्रियमाण कर्म पिछले कर्मों का फल भी हो सकते हैं। कार्यकारण की शृंखला में एक कड़ी भी हो सकते हैं और क्योंकि आत्मतत्त्व की नींव ही स्वतंत्रता पर खड़ी है, इसलिये ये क्रियमाण कर्म आत्मतत्त्व के इस जन्म के सर्वथा स्वतंत्र कर्म भी हो सकते हैं। इन्हें पूर्वजन्मों का फल अर्थात् दैव (Fate) या इस जन्म के स्वतंत्र कर्म=पुरुषार्थ (Freewill) मानने से कार्य कारण के नियम कोई त्रुटि नहीं होती।

कमर्फल– जो भी कर्म किया जाता है उसका कोई न कोई फल तो निश्चित रूप से होता है। कुछ कर्म व्यक्ति अपनी इच्छा से अकेला करता है तो कुछ दूसरों की सहायता से। मनुस्मृतिकार ने मांसभक्षण का उदाहरण देते हुए सामूहिक कार्य में अनेकों की सहभागिता का वर्णन प्रस्तुत किया है। मनुस्मृतिकार के अनुसार–

''अनुमन्ता विशसिता निहन्ता क्रयविक्रयी।
संस्कर्ता चोपहर्ता च खादकश्चेति घातकाः॥[१९]

अर्थात् सलाह देने वाला, काटने वाला, खरीदने–बेचने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला और खाने वाला अर्थात् ये सभी अपने–अपने योगदान के अनुरूप फल के भागी होते हैं। ऐसे सामूहिक कार्यों में सहयोगी उसके फल में हिस्सेदार होते हैं। श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार हम जिन फलों को भोगते हैं वे सदैव कर्म पर ही निर्भर होते हैं।[२०] कर्म का फल सदा कर्म के सूक्ष्म–स्थूल रूप के अनुरूप ही होता है। अत एव मनुस्मृतिकार ने बारहवें

अध्याय में बड़े विस्तार से बताया है कि मन, इन्द्रिय, शरीर के अलग-अलग रूप से या इनमें से दो या इन तीनों के मेल से आत्मा जैसा कर्म करता है उसका फल तदनुरूप किसी न किसी जन्मान्तर में अवश्य ही प्राप्त होता है।[२१]

वैदिक चिन्तन में कर्म और फल के सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए आचार्य भद्रसेन वेद लिखते हैं- "कर्म और फल में पूर्वापर सम्बन्ध है। फल शब्द अपने साथ सम्पृक्त फलदाता, भोक्ता और वर्तमान-भूत-प्रारब्ध आदि भावों को जहाँ उजागर करता है, वहाँ विशेष रूप से फल शब्द खेती, बागवानी की प्रक्रिया से प्राप्य रूप को भी स्मरण कराता है जो कि भूमि की सज्जा, बीज, उसका वपन, सिंचन, सम्भाल, पुष्प-फल, आगमन और परिपाक तक का प्रकरण सामने ला देता है।"[२२] और यही कारण है कि हमारी भाषाओं में कृषिप्रक्रिया के आधार पर अनेक कथन, लोकोक्तियाँ, मुहावरे मिलते हैं। यथा-जैसा बोओगे वैसा काटोगे।[२३]

कर्मफल के विषय में योगदर्शन का वचन है-

"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥"[२४]

अर्थात् कर्म रूपी मूल अर्थात् कारण के होने पर ही जाति, आयु और भोगरूपी फल होते हैं। यहाँ जाति से तात्पर्य विविध योनियों के शरीर से है, क्योंकि वैशेषिक दर्शन में सदृशता, समानतामूलक लक्षण शरीर में ही घटता है।[२५] न्यायदर्शन के अनुसार भी जाति का लक्षण शरीर पर ही चरितार्थ होता है। अतः न्यायदर्शन में कहा गया है-

"समानप्रसवात्मिका जातिः॥"[२६]

अतः हम जो सुख, प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, वह पुण्य कर्मों का फल होता है और दुःख या अप्रसन्नता पाप=अशुभ कर्मों का परिणाम होती है।[२७]

योगदर्शन में कर्मफल को दो भागों में बाँटा गया है-

"कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः"[२८]

१. दृष्टजन्मवेदनीय - जिन कर्मों का फल हम इस जन्म में भोग चुके हैं, भोग रहे हैं या भोगेंगे; वे ही दृष्टजन्मवेदनीय कर्मफल कहलाते हैं। अधिकांश कर्मफल दृष्टजन्मवेदनीय होते हैं अर्थात् इन कर्मों का फल हम इसी जन्म में भोग लेते हैं।

२. अदृष्टजन्मवेदनीय - अदृष्टजन्मवेदनीय वे कर्मफल हैं जिन्हें हम इस जन्म में नहीं, अपितु आगामी जन्मों में भोगेंगे। योगदर्शन में इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए लिखा गया है-

"सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः।"[२९]

अर्थात् जो कमर्फल शेष रहते हैं वे आगामी अन्य जन्मों में भोगने पड़ते हैं।

काल की दृष्टि से कमर्फल को तीन भागों में बाँटा गया है-

१.सद्यःफलप्रद, २.विलम्बित, ३.अन्यजन्मवेदनीय।

कमर्फल के विषय में श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है-

"नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥"[३०]

अर्थात् मनुष्य जो भी कर्म करता है, उसका वह कर्म या पुरुषार्थ कभी नष्ट नहीं होता है। उसके कमर्फल में कोई विघ्न नहीं आता है। यदि वह अच्छे कर्म करता है तो उसका अच्छा फल मिलेगा। उसका थोड़ा सा भी पवित्र और उदारता का कार्य बड़े संकटों से उसे बचाता है। श्रीमद्भगवद्गीता में सत्कर्म करने वाले की सदा उन्नति होने की बात कही गई है। महर्षि व्यास कहते हैं कि उसका जीवन सदा सुखमय होता है, उसकी कदापि दुर्गति नहीं होती। वे उत्तम कुलों में जन्म लेते हैं और सदा उन्नति की ओर अग्रसर होते हैं।

"पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
नहि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति॥
प्राप्यपुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽएभिजायते॥

अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्।
एतद्धि दुर्लभतरं लोके जन्म यदीदृशम्॥[३१]

कमर्फल के विविध पक्षों को न्यायदर्शनकार इस प्रकार स्पष्ट करता है–

''ईश्वरः कारणं पुरुषकमर्फल्यदर्शनात्।
न पुरुषकर्माभावे फलनिष्पत्तेः।
तत्कारित्वादहेतुः। अकृताभ्यागम॥''[३२]

अर्थात् अनेक व्यक्तियों को कर्म करने पर भी उसका फल नहीं मिलता, अतः इस सन्दर्भ में ईश्वर की कृपा, इच्छा ही फल का एकमात्र कारण है। तथापि एकमात्र ईश्वर ही फल का कारण नहीं, क्योंकि वह फलप्राप्ति व्यक्ति के कर्मों के बिना नहीं होती। यदि ईश्वर ही एकमात्र कारण होता, तो वह वरदान, इच्छा व्यक्ति के कर्मों के बिना भी हो जाती। कर्म करने पर ही ईश्वर कृपा करता है, अन्यथा नहीं। ऐसा मानने पर ही बिना किसी प्राप्ति तथा करने पर भी अप्राप्ति रूपी पक्षपात का दोष नहीं होता।

कमर्फल के सन्दर्भ में ऋग्वेद का कथन है कि सत्कर्म करने वालों के शुभ कर्म समाज की उन्नति में सहायक होते हैं और शान्ति की स्थापना में उपयोगी सिद्ध होते हैं–

''शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु॥''[३३]

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कमर्फलव्यवस्था इसीलिए अटल, अटूट है क्योंकि यह सारी व्यवस्था ईश्वर के द्वारा ही पूरी तरह से संचालित है। ईश्वर–सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और न्यायादि गुणयुक्त है। ईश्वर के अन्य कार्यसंसार रचना, पालना आदि जिस प्रकार पूर्णतः नियमबद्ध हैं, ठीक इसी प्रकार ईश्वर की कमर्फलव्यवस्था भी सर्वथा नियमबद्ध, व्यवस्थित, अटल और अटूट है। अत एव महर्षि दयानन्द लिखते हैं– ''जो सर्वदा सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, न्यायकारी परमात्मा को सर्वत्र जानता और मानता है वह पुरुष सर्वत्र, सर्वदा परमेश्वर को अपने को पृथक् न जानकर, कुकर्म करना तो कहाँ रहा किन्तु मन में कुचेष्टा भी नहीं कर सकता। क्योंकि वह जानता है, जो मैं मन, वचन और कर्म से भी कुछ बुरा करूँगा तो इस अन्तर्यामी के न्याय से बिना दण्ड पाये कदापि न बचूँगा।''[३४]

अतः कर्मसिद्धान्त के महत्त्व को समझते हुए ही मन, वचन और कर्म से समान होते हुए श्रेष्ठ समाज की संरचना में हमारा योगदान हो सकता है।

सन्दर्भ सूची–

१. श्रीमद्भगवद्गीता – महर्षि वेदव्यास ३.८

२. यजुर्वेद ४०.२

३. निरुक्त ३.१

४. वैशेषिकदर्शन – आचार्य कणाद १.१.७

५. 'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' अष्टाध्यायी – आचार्य पाणिनि १.४.४९

६. 'स्वतन्त्रः कर्ता' अष्टाध्यायी – आचार्य पाणिनि १.४.५४ वृत्ति– कर्मकर्तुमन्यथाकर्तुं यः स्वतन्त्रः स कर्ता।

७. मनुस्मृति – आचार्य मनु २.३–४

८. वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व – डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पृ. सं. ६३

९. ''मिथ्याज्ञानादनुकूलेषु रागः प्रतिकूलेषु द्वेषः। रागद्वेषाधिकाराच्चासत्येर्ष्यामायालोभादयो दोषा भवन्ति। दोषैः प्रयुक्तः शरीरेण प्रवर्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति, वाचाखनृतपरुषसूचनासम्बद्धानि, मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिकां चेति। सेयं पापात्मिकाप्रवृत्तिरधर्माय। अथ शुभा–शरीरेण दानं परित्राणं परिचरणं च, वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायं चेति, मनसा दयामस्पृहां श्रद्धां चेति। सेयं धर्माय।'' न्यायदर्शन, वात्स्यायनभाष्य

१०. वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व – डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पृ. सं. ७१

११. अथर्ववेद ११.८.६

१२. अथर्ववेद ६.२३.२

१३. वैदिक दर्शन – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी पृ.सं. ९७

१४. योगदर्शन – महर्षि पतंजलि २.१४

१५. अथर्ववेद १०.१.५

१६. ऋग्वेद ७.३२.९

१७. ऋग्वेद १०.२२.०८

१८. वैदिक संस्कृति के मूल तत्त्व – डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार, पृ. सं. ७४

१९. मनुस्मृति – महर्षि मनु ५.१५

२०. ''क्षिप्रं हि मानुषे लोके, सिद्धिर्भवति कर्मजा॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय:॥
एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभि:।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वै: पूर्वतरं कृतम्॥
श्रीमद्भगवद्गीता–महर्षिवेदव्यास ४.१२, ३.२०, ४.१५

२१. ''पद्रव्येष्वभिध्यानं मनसाखनिष्टं चिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्ममानसम्॥
पारूष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वश:।
असम्बद्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम्॥
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानत:।
परदारोपसेवा च शरीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
मानसं मनसैवायमुपभुङ्क्ते शुभाशुभम्।
वाचा वाचा कृतं कर्म कायेनैव च कायिकम्॥
शरीरजै: कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नर:।
वाचिकै: पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिजाम्॥ मनुस्मृति – महर्षि मनु १२.५–९

२२. वैदिक चिन्तन – सं. डॉ. रघुवीर वेदालंकार, पृ. सं. २११

२३. ''यादृशं तूप्यते बींज क्षेत्रे कालोपपादिते।
तादृग्रोहति तस्मिन् बीजं स्वैर्व्यंजितं गुणै:॥
अन्यदुप्तं जाप्तमन्यदितेन्नोपपद्यते।
उप्यते यद्धि यद् बीजं तत्तदेव प्ररोहति॥ मनुस्मृति – महर्षि मनु ९.३६,४०

२४. योगदर्शन – महर्षि पतंजलि २.१३

२५. ''भावोखनुवृत्तेरेव हेतुत्वात् सामान्यमेव॥'' वैशेषिक दर्शन – महर्षि कणाद १.२.४

२६. न्यायदर्शन – महर्षि गौतम २.२.६८

२७. ''ते ह्याह्लादपरिताफला: पुण्यापुण्यहेतुत्वात्॥ योगदर्शन– महर्षि पतंजलि २.१४

२८. योगदर्शन – महर्षि पतंजलि २.१२

२९. योगदर्शन – महर्षि पतंजलि २.१३

३०. श्रीमद्भगवद्गीता – महर्षि वेदव्यास २.४०

३१. श्रीमद्भगवद्गीता – महर्षि वेदव्यास ६.४०–४२

३२. न्यायदर्शन – महर्षि गौतम ४.१.१९–२२

३३. ऋग्वेद ७.३५.४

३४. सत्यार्थप्रकाश ११ समुल्लास, पृ.सं. २६९

सह आचार्य, संस्कृत विभाग
उच्च शिक्षा विभाग, राजस्थान सरकार।

प्रवेश सूचना

परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा ऋषि उद्यान, अजमेर में सञ्चालित आर्ष गुरुकुल में प्रवेश प्रारम्भ हैं। वैदिक धर्म के उपदेशक-प्रचारक बनने के इच्छुक युवा प्रवेश हेतु शीघ्र आवेदन करें।

प्रवेश हेतु अविवाहित एवं आठवीं उत्तीर्ण होना अनिवार्य है। भोजन एवं आवास की नि:शुल्क सुविधा है। **सम्पर्क सूत्र: ८८९०३१६९६१**

संस्था की ओर से....

क्या आप प्रतिदिन अतिथि यज्ञ नहीं कर पाते? तो आइये, अतिथि यज्ञ के होता बनिये

वैदिक नित्यकर्मों में पञ्चमहायज्ञ अवश्य करणीय कर्म हैं। इन्हीं में से एक है- अतिथि यज्ञ। प्रत्येक गृहस्थ के लिए अतिथि यज्ञ प्रतिदिन करना अनिवार्य है, किन्तु आपको प्रतिदिन अतिथि मिलना संभव नहीं, फिर अतिथि यज्ञ कैसे किया जाय? इसका उपाय है, कुछ राशि प्रतिदिन अतिथि यज्ञ के नाम से निकाल ली जाये और वह राशि एकत्र कर अतिथि सत्कार में गुरुकुल/आश्रम में भोजन आदि के सहयोग में दे दी जाय। इस राशि को प्रदान कर सभा के माध्यम से अतिथि यज्ञ सम्पन्न कर सकते हैं।

सभा की योजना के अनुसार प्रतिवर्ष ५ हजार एक सौ रु. की राशि प्रदान करने वाले उदार यशस्वी दानदाताओं का नाम अतिथि यज्ञ के स्थायी होता सदस्यों में अंकित किया जाता है, ऐसे सज्जनों के नाम परोपकारी में प्रकाशित भी किये जाते हैं।

आप से प्रार्थना है अपना नाम पता और संकल्प लिखकर अवगत करायें और अतिथि यज्ञ के होता बनें। अपनी राशि प्रतिमाह अथवा सुविधानुसार मनीआर्डर/डीडी/चैक/सभा के खाते में ऑनलाइन द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कार्यालय में जमा करा सकते हैं।

आपका दान ८०जी (आयकर की धारा) के अंतर्गत कर मुक्त होगा।

अनेक 'अतिथि यज्ञ के होता' सदस्यों का आग्रह है, निश्चित तिथि, जन्मदिन, विवाह वर्षगांठ या विशेष अवसर पर वे अपनी ओर से संस्था में भोजन कराना चाहते हैं। ऐसे महानुभावों से निवेदन है कि वे अतिथि यज्ञ के होता के रूप में एक दिन के भोजन व्यय की राशि लगभग पाँच हजार एक सौ रुपये भेजते हुए इच्छित दिन का विवरण सूचित करेंगे, तो उन्हें उनके जन्मदिवस आदि पर परोपकारिणी सभा की ओर से दूरभाष द्वारा आशीर्वाद प्रदान किया जायेगा। यदि उस शुभ अवसर पर वे स्वयं उपस्थित होकर यजमान बनें तो यह सर्वोत्तम होगा।

अतिथि-यज्ञ के होताओं से अनुरोध

अपनी राशि भेजते समय **जन्मतिथि/वैवाहिक वर्षगाँठ आदि व दूरभाष संख्या** सूचित करना न भूलें। साथ ही यह भी अवश्य सूचित करा देवें कि पहले से भिजवा रहे हैं अथवा नया शुरू किया है।

दूरभाष - **8890316961**

परोपकारिणी सभा के प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु बैंक विवरण

खाताधारक का नाम - परोपकारिणी सभा, अजमेर (PAROPKARINI SABHA AJMER)

१. बैंक का नाम-**भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।**

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या-**10158172715** **IFSC-SBIN0031588**

email : psabhaa@gmail.com **सूचना देने हेतु चलभाष - 8890316961**

‘सत्यार्थ प्रकाश’ एवं ‘महर्षि दयानन्द जीवन–चरित्र’ प्रचार महायज्ञ में आपकी आहुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती कृत अमर ग्रन्थ ‘सत्यार्थप्रकाश’ ने अविवेक, पाखण्ड, अन्धविश्वासों का दमन कर समाज में एक नई क्रान्ति ‘वैचारिक क्रान्ति’ को जन्म दिया। अत: परोपकारिणी सभा ने ७ वर्ष पूर्व ‘विश्व पुस्तक मेला’ दिल्ली में प्रतिवर्ष **‘सत्यार्थप्रकाश’** के साथ **‘महर्षि का जीवन-चरित्र’** एवं **‘आर्याभिविनय’** पुस्तक का वितरण करने की योजना बनाई, जो निरन्तर चल रही है।

एक सैट की छपाई का खर्च लगभग १५० रु. आता है। ५०० **से कम प्रतियों पर स्टिकर लगाकर तथा ५०० या अधिक प्रतियों पर दानी व्यक्ति का नाम छपवाकर वितरित किया जाएगा।**

१५० रु. प्रति सैट के अनुसार आप दान देकर अपनी ओर से, अपने नाम से पुस्तक वितरित करा सकते हैं।

अपने दान के साथ ‘सत्यार्थप्रकाश वितरण’ अवश्य लिख देवें, और साथ ही अपना नाम एवं पता भी। यह दान आप परोपकारिणी सभा के खाते में ऑनलाइन, चैक द्वारा या फिर परोपकारिणी सभा के पते पर मनिऑर्डर भी कर सकते हैं।

न्यूनतम	२० प्रतियाँ	३०००/– रु.
	३० प्रतियाँ	४५००/– रु.
	५० प्रतियाँ	७५००/– रु.
	१०० प्रतियाँ	१५०००/– रु.
	५०० प्रतियाँ	७५०००/– रु.
	१००० प्रतियाँ	१,५०,०००/– रु.

इस प्रकार जितनी अधिक प्रतियाँ बाँटना चाहें, उतनी राशि दूरभाष संख्या के साथ भेज देवें। धन्यवाद।

– कन्हैयालाल आर्य, मंत्री, परोपकारिणी सभा

सभा प्रकल्पों में सहयोग करने हेतु

बैंक विवरण

खाताधारक का नाम

परोपकारिणी सभा, अजमेर

(PAROPKARINI SABHA AJMER)

बैंक का नाम

भारतीय स्टेट बैंक, डिग्गी चौक, अजमेर।

बैंक बचत खाता **(Savings)** संख्या–

10158172715

IFSC - SBIN0031588

UPI ID : PROPKARNI@SBI

मॉरीशस सरकार ने महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200 वीं जयन्ती पर जारी किया विशेष डाक टिकट

आर्यसमाज का विश्व में जहाँ अत्यधिक प्रभाव रहा, उनमें से एक देश मॉरीशस भी है। वहाँ आर्यसमाज की स्थापना 1911 ई. में हुई थी। बाद में वहाँ 1913 में आर्य परोपकारिणी सभा भी स्थापित की गई। वहाँ भारतीय मूल के लोगों का बहुमत रहा है जिनके बीच आर्यसमाज अत्यधिक लोकप्रिय है। आर्यसमाज ने वहाँ के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में विशिष्ट एवं महत्वपूर्ण कार्य किए हैं।

मॉरीशस के राजनेता आर्यसमाज से विशेष रूप से प्रभावित रहे हैं और आर्यसमाज के उत्थान व प्रचार प्रसार के लिए सहयोग करते रहे हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200वीं जन्म जयन्ती के उपलक्ष में वहाँ की सरकार ने एक डाक टिकट जारी करके महर्षि के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की है।

मॉरीशस सरकार इसके लिए विशेष प्रशंसा व धन्यवाद की पात्र है।

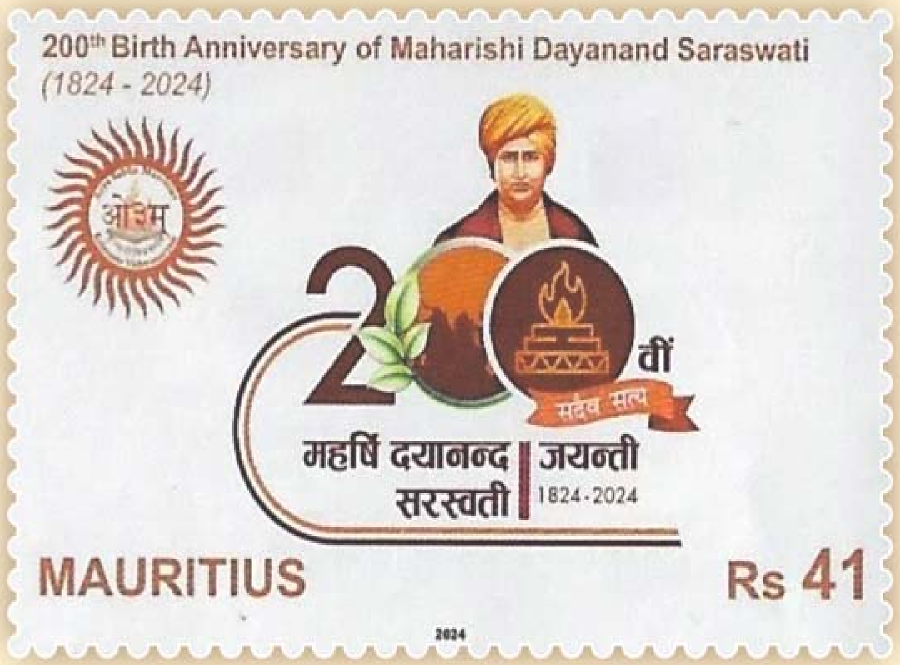

मॉरीशस सरकार की ओर से जारी आधिकारिक प्रथम दिवस कवर में महर्षि दयानन्द सरस्वती (1824 – 2024) की 200वीं जयन्ती और पोर्ट लुइस में आर्य भवन का एक डाक टिकट शामिल है। इस बारे में जारी विवरण के अनुसार– ''1824 में जन्मे, भारतीय इतिहास में एक प्रमुख और प्रभावशाली व्यक्ति थे, जिन्हें राष्ट्र निर्माण और सुधार में उनके योगदान के लिए जाना जाता है। वे आर्य समाज के संस्थापक थे। उनकी शिक्षाओं और दर्शन का न केवल भारत में बल्कि मॉरीशस सहित विभिन्न देशों में भी गहरा प्रभाव पड़ा।''

आर जे/ए जे/80/2024-2026 तक प्रेषण : १४-१५ दिसम्बर २०२४ आर.एन.आई. ३९५९/५९

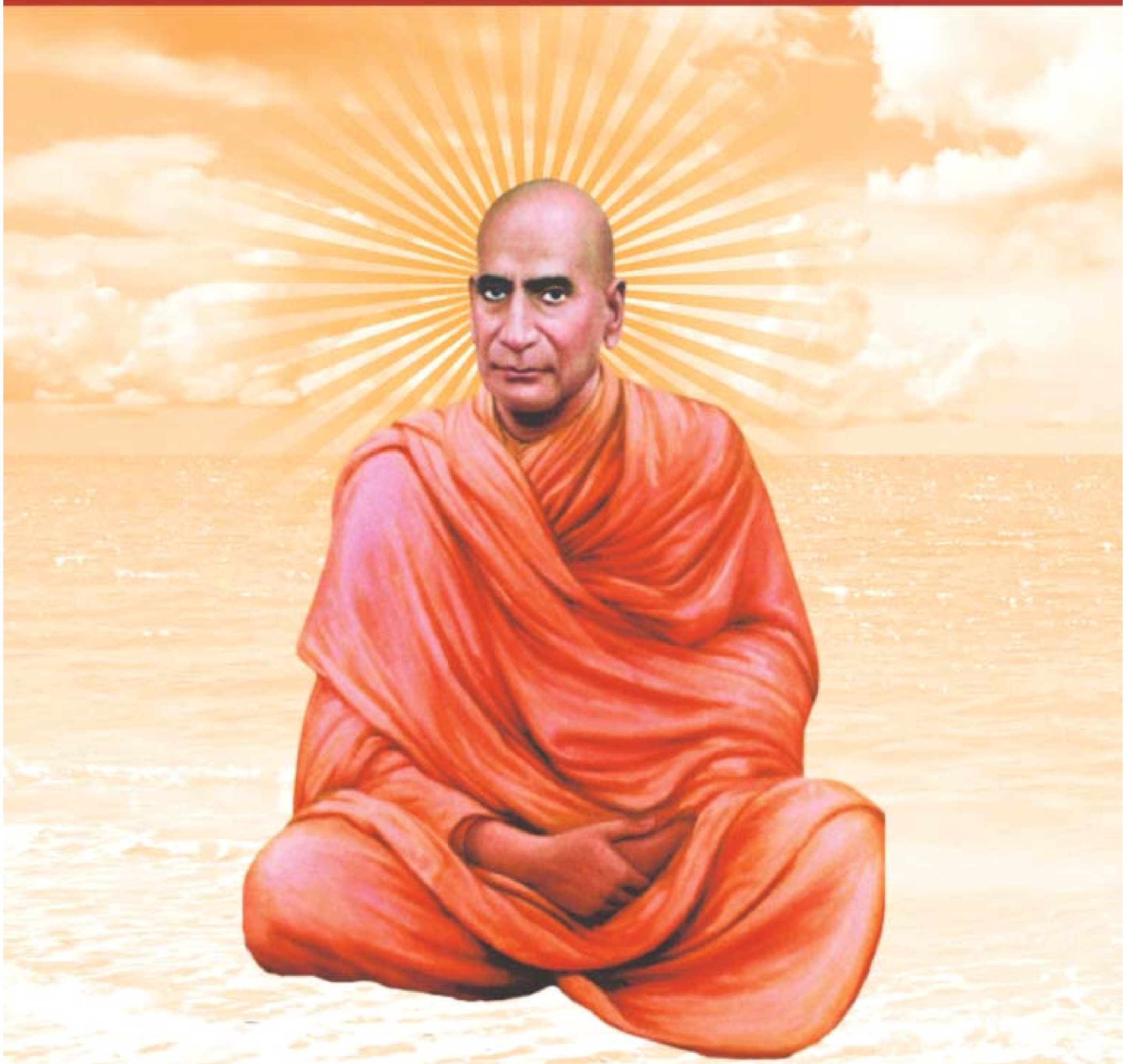

स्वामी श्रद्धानन्द सरस्वती

बलिदान दिवस 23 दिसम्बर

प्रेषकः
परोपकारिणी सभा
दयानन्द आश्रम, केसरगंज,
अजमेर (राजस्थान) ३०५००१

सेवा में,

डाक टिकिट